संघीय शासन की चुनौतियां
(Challenges of Federal Government)

सहकारी संघवाद

भारतीय संघीय प्रणाली को सहकारी संघवाद का नाम दिया जाता है। भारतीय संघीय प्रणाली में परंपरागत् रुप में संघ एवं राज्यों के मध्य विषयों व शक्तियों का विभाजन 7वीं अनुसूची में किया गया है। परंपरागत् रुप में शक्ति विभाजन ही संघवाद का मूल आधार रहा है, परंतु वर्तमान में संघ एवं राज्यों के बीच वित्तीय एवं प्रशासनिक मामलों पर सहयोग ही सहकारी संघवाद है। सहकारी संघवाद के तहत् केंद्र एवं राज्यों के बीच सहयोग की भावना होती है, जिसका उद्देश्य विकास व सामाजिक भलाई है। सहकारी संघवाद का आधार संविधान में वर्णित है, यह संसदीय प्रावधानों में उल्लिखित है तथा इसके **संविधानेत्तर प्रावधान भी विद्यमान हैं** -

(A) संवैधानिक प्रावधान

- संघ के कार्यपालिकीय कृत्यों को राष्ट्रपति राज्य सरकार को सौंप सकता है, (अनुच्छेद-258)।
- राज्य सरकार भी राज्य के प्रशासनिक कार्यों को संघ सरकार को सौंप सकता है, (अनुच्छेद-258(1))।
- संघ की संपत्ति को राज्य सरकार के करों से छूट होगी, यदि संसद ऐसा विधि द्वारा निर्मित करे, (अनुच्छेद-285)।
- वित्त आयोग के द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले अनुदानों की सिफारिश की जाती है, (अनुच्छेद-275)।
- राज्य की संपत्ति को संघ के कराधान से छूट दी गई है, (अनुच्छेद-289)।
- भारत में सर्वत्र वाणिज्य एवं व्यापार का मुक्त प्रसार होगा, (अनुच्छेद-301)।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-307 में **अंतर्राज्यीय वाणिज्यिक आयोग** की स्थापना का प्रावधान है, लेकिन इसके अनुपालन में संसद ने अभी तक किसी आयोग का निर्माण नहीं किया है, जबकि अमेरिकी संघ में अंतर्राज्यीय वाणिज्यिक आयोग का गठन किया जा चुका है।

अंतर्राज्यीय परिषद्

अनुच्छेद-263 के अंतर्गत् अंतर्राज्यीय परिषद् का प्रावधान किया गया है। **इसके प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं** -

- यदि राज्यों के बीच विवाद उत्पन्न होते हैं, तो उनकी जांच करना व उनको सलाह देना।
- संघ तथा एक या एक से अधिक राज्यों के सामान्य हित से संबंधित विषयों पर विचार करना।
- कुछ या सभी राज्यों के सामान्य हितों के संदर्भ में विचार-विमर्श करना।

यह एक **संवैधानिक निकाय** है, जिसकी संरचना का निर्धारण संघ सरकार के द्वारा किया गया है। इस परिषद् का गठन वी. पी. सिंह सरकार ने वर्ष-1990 में किया था। अंतर्राज्यीय परिषद् की स्थापना राष्ट्रपति करता है और प्रधानमंत्री इसका अध्यक्ष होता है तथा इसमें प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्र सरकार के छः कैबिनेट स्तर के मंत्री (गृह मंत्री सहित) बतौर सदस्य के रुप में होते हैं। इसमें सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, केंद्र शासित क्षेत्रों के प्रशासक तथा दिल्ली एवं पांडिचेरी के मुख्यमंत्री भी शामिल होते हैं। अंतर्राज्यीय परिषद् की एक स्थायी समिति का भी गठन किया गया है, जिसकी बैठकें निरंतर होती रहती हैं। व्यवहार में अंतर्राज्यीय परिषद् की बैठकें आयोजित नहीं होंती। वर्ष-2016 में बैठक का आयोजन किया गया, जबकि इसके पहले इसकी बैठक वर्ष-2006 में आयोजित की गई थी। वर्ष-1990 में इसका गठन किया गया, परंतु इसकी केवल अभी तक 11 बैठकें ही आयोजित हो सकीं तथा बैठकों में राज्यों के बीच सहयोग के बजाए, राजनीतिक मुद्दे प्रभावी होते हैं। वर्तमान बैठक में जी. एस. टी. पारित करने तथा आतंकवाद को रोकने के लिए साझे सहयोग की पहल की गई। इस बैठक में उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और जम्मू एवं कश्मीर के मुख्यमंत्री शामिल नहीं हुए।

(B) वैधानिक प्रावधान

संसदीय विधि के द्वारा सहकारी संघवाद के निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं, जो संघ एवं राज्यों के बीच सहयोग को **बढ़ावा देते हैं** -

1. क्षेत्रीय परिषदें

जवाहर लाल नेहरु के प्रयासों से 5 क्षेत्रीय परिषदों का गठन किया गया, जिसकी संस्तुति राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के तहत् किया गया। क्षेत्रीय परिषदों का पदेन अध्यक्ष केंद्रीय गृहमंत्री होता है। इसके अलावा क्षेत्रीय परिषदों में विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्री क्रमानुसार एक वर्ष के लिए परिषद् के उपाध्यक्ष के रुप में कार्य करते हैं और प्रत्येक राज्य से दो अन्य मंत्री और संघ शासित क्षेत्रों के दो प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। राज्यों के मुख्य सचिव एवं नीति आयोग के मनोनीत सदस्य परिषद् के सलाहकार के रुप में कार्य करते हैं, जिन्हें परिषद् में मतदान का अधिकार नहीं होता। अतः अध्यक्ष को भी मतदान का अधिकार नहीं होता, परंतु निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। भारत में निम्नलिखित **पांच क्षेत्रीय परिषदें** कार्य कर रही हैं, **जिनके अंतर्गत् निम्नलिखित क्षेत्र शामिल हैं** -

1. **पूर्वी क्षेत्रीय परिषद्** - बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, सिक्किम व पश्चिम बंगाल।
2. **पश्चिमी क्षेत्रीय परिषद्** - गोवा, गुजरात, महाराष्ट्र, दमन व दीव तथा दादर एवं नगर हवेली।
3. **मध्य क्षेत्रीय परिषद्** - छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश।
4. **उत्तरी क्षेत्रीय परिषद्** - हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली तथा चण्डीगढ़।
5. **दक्षिणी क्षेत्रीय परिषद्** - आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु तथा पाण्डिचेरी।

उद्देश्य

इसके निम्नलिखित **उद्देश्य हैं** -

- देश के एकीकरण को बढ़ावा देना।
- क्षेत्रवाद, भाषायी तथा पृथक्तावाद को रोकने में सहायता करना।
- विभाजन के बाद के प्रभावों को दूर करना ताकि पुनर्गठन, एकीकरण तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया एक साथ चल सके।

कार्य

- सामाजिक नियोजन।
- आर्थिक नियोजन।
- अंतर्राज्यीय परिवहन।
- सीमा विवाद।
- अल्पसंख्यकों से संबंधित मुद्दे।

परिषद् में शामिल राज्यों में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं लगभग समान होती हैं। परिषद् के द्वारा राज्यों के बीच तथा संघ एवं राज्यों के बीच साझे मुद्दे पर सहयोग संभव है। कृष्णा नदी जल विवाद परिषद् के द्वारा हल किया गया तथा भाखड़ा परियोजना भी परिषद् के सहयोग का परिणाम है।

2. पूर्वोत्तर परिषद्

पूर्वोत्तर परिषद् का गठन वर्ष-1971 में संसदीय विधि द्वारा किया गया, जिसमें वर्ष-2002 में संशोधन कर सिक्किम को भी शामिल किया गया। इस परिषद् में असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम एवं सिक्किम सहित आठ (8) राज्य हैं, जिसका मुख्यालय शिलांग में है। इस परिषद् में इन राज्यों के राज्यपाल एवं मुख्यमंत्री सम्मिलित होते हैं। राष्ट्रपति के द्वारा इस परिषद् के अध्यक्ष को मनोनीत किया जाता है। यह सामान्यतः संघ सरकार के मंत्रिपरिषद् का सदस्य जो सामान्यतः पूर्वोत्तर राज्यों के विकास का मंत्री तथा साथ ही राष्ट्रपति के द्वारा एक अन्य सदस्य भी मनोनीत किया जाता है, जो परिषद् का उपाध्यक्ष होता है।

यह उल्लेखनीय है कि परिषद् का निर्माण एक सलाहकारी संगठन के रुप में किया गया है, परंतु वर्तमान में परिषद् नियोजन की संस्था के रुप में कार्य कर रही है। इस क्षेत्र में मैदानी क्षेत्र के लोगों को छोड़कर अधिकतर जनसंख्या जनजातीय हैं। यहां प्रत्येक जनजाति अपने आप में एक छोटा समूह है, जिसका अन्य किसी दूसरे समूह के साथ सामाजिक समागम अथवा सामाजिक मेल-मिलाप बहुत कम होता है। इन छोटे-छोटे समूहों को आपस में बांधे रखने के लिए एक मात्र कड़ी प्रशासनिक मशीनरी है। पूर्वोत्तर का क्षेत्र तीन विदेशी राज्यों की सीमाओं से लगे होने के कारण अत्यंत ही संवेदनशील तथा महत्वपूर्ण हैं, जिनमें चीन के साथ लगी सीमाएं अत्यंत संवेदनशील हैं। इसलिए इन 8 पूर्वोत्तर राज्यों के हित को ध्यान में रखते हुए संयुक्त कार्यवाही के सुचारु संचालन के लिए पूर्वोत्तर परिषद् का गठन किया गया है।

परिषद् के दो प्रमुख उद्देश्यों में शामिल हैं -

1. पूर्वोत्तर क्षेत्र में लोक व्यवस्था एवं सुरक्षा को सुनिश्चित करना।
2. समेकित या एकीकृत आर्थिक विकास (Integrated Economic Development) को प्रोत्साहित करना।

कार्य

इसके द्वारा निम्नलिखित **कार्य किए जाते हैं** -

- आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन, जिसमें राज्यों के साझे हित हों।
- अंतर्राज्यीय परिवहन एवं संचार को मजबूत करना।
- बाढ़ नियंत्रण अथवा बिजली से संबंधित किसी विषय पर सलाह देना।

(C) संविधानेत्तर प्रावधान

संघ एवं राज्यों के बीच सहयोग को बढ़ावा देने के अनेक आधार न तो संविधान में वर्णित हैं और न ही इसका उल्लेख संसदीय विधि में है, बल्कि यह सरकार के द्वारा निर्मित तथा परंपराओं पर आधारित हैं।

1. राष्ट्रीय विकास परिषद्

इसकी स्थापना 6 अगस्त, 1952 में एक कार्यपालिकीय निर्णय के द्वारा हुई थी। यह न तो सांविधिक है और न ही संवैधानिक संस्था। राष्ट्रीय विकास परिषद् की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है तथा अन्य सदस्यों में संघीय मंत्री, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, केंद्र शासित क्षेत्रों के प्रशासक तथा नीति आयोग के सदस्य शामिल होते हैं।

कार्य

- राष्ट्रीय विकास परिषद् का मूल कार्य योजना के प्रारुप पर अपनी सहमति देना है अर्थात् योजना आयोग की कोई भी योजना तब तक लागू नहीं हो सकती, जब तक राष्ट्रीय विकास परिषद् इसकी अनुमति प्रदान न कर दे।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् को प्रभावित करने वाले सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार।
- समय-समय पर राष्ट्रीय योजनाओं के क्रियान्वयन का पुनरावलोकन तथा राष्ट्रीय नियोजन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपायों को बताना और अब राष्ट्रीय विकास परिषद् को हटाकर नीति आयोग की शासकीय परिषद् का गठन किया गया है।

2. योजना आयोग

इसका गठन केंद्रीय मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव से मार्च, 1950 में किया गया था। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता था। योजना आयोग के उपाध्यक्ष को कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्राप्त था। योजना आयोग की भूमिका सलाहकारी होती है। यह अखिल भारतीय स्तर पर योजना बनाता था। यह न तो सांविधिक संस्था है और न ही संवैधानिक संस्था।

कार्य

- देश के पदार्थ, पूंजी और मानव संसाधनों का ऑकलन करना और उनके संवर्धन की संभावनाओं को तलाशना।
- देश के संसाधनों का संतुलित उपयोग करते हुए सबसे प्रभावी योजना को बनाना।
- वरीयताओं का निर्धारण एवं उन स्तरों को परिभाषित करना, जिनमें इन योजनाओं को लागू किया जा सकता है।
- उन कारकों को चिन्हित करना, जिससे आर्थिक विकास अवरुद्ध हो रहा है।

- योजना के निष्पादन में प्राप्त प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन और आवश्यक परिवर्तनों के संबंध में सिफारिश करना।

आलोचना

योजना आयोग ने अपनी स्थिति धीरे-धीरे एक केंद्रीयकृत योजना निर्माण की संस्था के रुप में स्थापित कर ली थी। योजना आयोग द्वारा संपादित नियोजन के कार्य की आलोचना **निम्नलिखित आधारों पर की जाती रही है** -

- योजना आयोग व्यवहार में योजनाओं के निर्माण में राज्यों द्वारा प्रस्तुत मांगों को महत्व प्रदान नहीं करता।
- सभी राज्यों के लिए एक जैसी योजनाओं का निर्माण किया जाता है, जबकि राज्यों की समस्याएं पृथक्-पृथक् होती हैं।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् में राज्य केवल अधिक धन की मांग करते हैं।
- राज्यों को धन आवंटन एवं वितरण में योजना आयोग निष्पक्ष नहीं होता।
- आर्थिक नियोजन प्रक्रिया में निम्नतम स्तर की समस्याओं को स्थान प्राप्त नहीं हो पाता है, क्योंकि योजनाओं में सामान्य समस्याओं को ध्यान में रखा जाता है।
- इसमें अत्यधिक केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे राज्यों की स्वायत्तता में कमी आ जाती है।

आलोचकों के अनुसार, योजना आयोग ने एक परामर्शदात्री संस्था से प्रारंभ कर व्यवहार में एक सर्वोच्च मंत्रिमंडल का स्वरुप प्राप्त कर लिया था। परिणामस्वरुप नियोजन में योजना आयोग का प्रभाव सरकार से अधिक हो गया। राज्यों की योजनाओं के लिए उनकी आयोजना को धन के आवंटन एवं वितरण का कार्य भी योजना आयोग द्वारा किया जाता था। अतः राज्यों का प्रभाव योजना पर न होकर, योजना आयोग का प्रभाव राज्यों पर था। राष्ट्रीय विकास परिषद् में भी राज्यों के मुख्यमंत्री न तो खुलकर बोलते थे और न ही कोई ठोस सुझाव देते थे। अतः योजना आयोग एक केंद्रीयकृत योजना पूरे देश के लिए बनाता था, जिसमें जनसहयोग था ही नहीं, योजना निचले पायदान से बनकर नहीं जाती थी और न ही राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों द्वारा योजना को प्रभावित किया जाता था। अतः नियोजन का स्वरुप सहकारी नहीं था। समय-समय पर यह मांग उठती रही कि योजना निर्माण केंद्र में बैठकर न बनाई जाए तथा लोकतांत्रिक एवं संघात्मक देश भारत में गांव, जिले एवं राज्यों की समस्याओं को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन करना चाहिए। अतः केंद्रीयकरण के स्थान पर विकेंद्रीकरण को स्थान दिया जाना चाहिए।

नीति आयोग की स्थापना योजना आयोग में सुधार की मांगों को ध्यान में रखकर की गई है। नीति आयोग के उद्देश्यों में कुछ इस प्रकार के दिशा-निर्देश दिए गए हैं, जिससे आर्थिक नियोजन में राज्यों को अधिक महत्व प्रदान किया जाएगा। साथ ही राज्यों से उनकी अपनी क्षमताओं एवं समस्याओं के लिए योजना का प्रारुप बनाने के लिए कहा जाएगा तथा इस प्रारुप को ज्ञान के **'थिंक टैंक'** से परिमार्जित कर योजना को अंतिम रुप प्रदान किया जाएगा तथा कोई भी केंद्रीय योजना राज्यों पर थोपी नहीं जाएगी।

3. नीति आयोग

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 1 जनवरी, 2015 को एक प्रस्ताव पारित कर योजना आयोग के स्थान पर नई संस्था नीति आयोग (NITI Aayog : National Institution for Transforming India) की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया तथा 5 जनवरी, 2015 को इसकी नियुक्ति कर दी गई। प्रथम नीति आयोग में प्रधानमंत्री अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष, दो पूर्णकालिक सदस्य एवं चार कैबिनेट मंत्री पदेन सदस्य तथा तीन विशिष्ट आमंत्रित मेहमान सदस्य सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त नीति आयोग में एक प्रशासनिक/संरक्षक परिषद् (Governing Council) के गठन का प्रावधान है, जिसमें सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और केंद्र शासित प्रदेशों के उप-राज्यपाल/प्रशासक सम्मिलित होंगे। इन प्रशासनिक परिषद् के साथ-साथ विशिष्ट क्षेत्रीय परिषदों (Regional Council) का गठन क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुसार किया जाएगा। प्रधानमंत्री समय-समय पर विशेष क्षेत्रों से संबंधित विद्वानों को नीति आयोग में विशिष्ट आमंत्रित सदस्यों के रुप में मनोनीत करते रहेंगे।

स्थापना का कारण

समूचे भारत के भौतिक एवं मानवीय विकास के लिए वर्ष-1950 में योजना आयोग की नींव रखी गई थी, जिसके द्वारा पांच वर्ष के लिए योजना का निर्माण तथा देश के आर्थिक विकास के लिए विशेषज्ञ एवं सलाहकारी संस्था

के रुप में स्थापित किया गया था। परंतु योजना आयोग देश के विकास के लिए दीर्घकालिक रणनीति का निर्माण नहीं कर सका और विशेषज्ञों के बजाए, इसमें सिविल सेवकों की नियुक्ति होने लगी। वर्ष-1990 के बाद भारत में समाजवादी अर्थव्यवस्था के बजाए, उदारीकरण एवं निजीकरण की नीति स्वीकार किया गया तथा विश्व में भूमंडलीकरण का प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया। परंतु इस बदलते आर्थिक वातावरण में आयोग कोई वैकल्पिक नीति का निर्माण नहीं कर सका। केंद्रीयकृत नियोजन में योजना निर्माण में राज्यों की भूमिका संघ के अधीनस्थ थी और समूचे भारत के लिए योजना आयोग योजनाओं का निर्माण कर रहा था। इस परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में आयोग को भी परिवर्तित करने का प्रयत्न किया गया।

नीति आयोग की प्रकृति

नीति आयोग के द्वारा योजना आयोग को एक विशेषज्ञ संस्था के रुप में निर्मित किया गया, जिसके द्वारा देश के विकास के लिए 20 वर्षों की लंबे समय की रणनीति का निर्माण किया जा सके, न कि पांच वर्ष के लिए योजना बने। इसके द्वारा **थिंक टैंक** की भूमिका का निर्वाह किया जाएगा। आयोग में संघ एवं राज्यों के बीच सहकारिता अथवा सहयोग बढ़ाने के लिए योजना निर्माण में राज्यों को भी समान स्थान दिया गया है, जिससे राज्यों की भूमिका संघ के समान एवं समकक्ष होगी। नीति आयोग की शासकीय परिषद् में सभी राज्यों एवं केंद्र शासित क्षेत्रों को समान महत्व प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय परिषदों का भी गठन किया गया है, जिसमें एक क्षेत्र के भौगोलिक रुप में निकट राज्यों को शामिल किया जाएगा, जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं एक समान हैं।

विशेषता

भारत समान, विविधतापूर्ण एवं बहुलतावादी देश में पूरे भारत के लिए एक केंद्र से नियोजन करना अत्यधिक कठिन है, क्योंकि अलग-अलग राज्यों की समस्याएं पृथक्-पृथक् हैं। राजस्थान राज्य में पेयजल एवं सिंचाई की समस्या है, तो उड़ीसा में आधारभूत संरचना का विकास सबसे बड़ी चुनौती है तथा बिहार, झारखण्ड अभी भी सामाजिक एवं आर्थिक रुप में पिछड़े हैं। जबकि गुजरात, महाराष्ट्र व पंजाब आर्थिक रुप में समृद्ध हैं। इसलिए राज्यों का नियोजन अलग-अलग समस्याओं के अनुसार हल होना चाहिए। नीति आयोग में संघ एवं राज्यों को योजना निर्माण में साझी भूमिका प्रदान की गई है। अगस्त, 2016 तक नीति आयोग की केवल दो बैठकें ही आयोजित हो सकीं। इन बैठकों में संघ एवं राज्यों के बीच वास्तविक सहयोग के बजाए, राजनीतिक संघर्ष हावी होता है।

4. राष्ट्रीय एकता परिषद्

राष्ट्रीय एकता परिषद् का विचार वर्ष-1961 में प्रधानमंत्री नेहरु के द्वारा प्रस्तुत किया गया और वर्ष-1962 में इसकी पहली बैठक हुई। इसका मूल उद्देश्य देश को विभाजित करने वाली विशिष्ट सांप्रदायिक, जाति, क्षेत्रवाद और भाषाई समस्याओं के समाधान की खोज करना है। राष्ट्रीय एकता परिषद् कार्यपालिका के द्वारा स्थापित एक संस्था है, जिसका अनेकों बार पुनर्गठन किया गया है और इसका वर्ष-2013 में पुनः पुनर्गठन किया गया तथा नई दिल्ली में इसकी 15वीं बैठक आयोजित की गई। इसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री तथा 14 कैबिनेट मंत्री इसके सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और केंद्र शासित क्षेत्रों के प्रशासकों को शामिल किया गया है। इसमें राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों के वरिष्ठ नेता सम्मिलित हैं तथा मानवाधिकार, अल्पसंख्यक, महिला और अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग के अध्यक्षों को सम्मिलित किया गया है। मीडिया से जुड़े व्यक्ति, व्यावसायिक घरानों के प्रतिनिधि, श्रमिकों के प्रतिनिधि तथा महिलाओं के प्रतिनिधियों को शामिल किया गया है एवं इसके अतिरिक्त देश के गणमान्य व्यक्ति भी इसमें शामिल हैं। इसकी स्थापना वर्ष-1986 में किया गया था। यह भी मूलतः संविधान में वर्णित संस्था नहीं है तथा यह एक सरकारी मशीनरी नहीं है, क्योंकि इसमें समाज के किसी भी बुद्धिजीवी को शामिल किया जा सकता है।

हरित संघवाद (Green Federalism)

भारत में देश के सभी क्षेत्रों के आर्थिक विकास पर बल दिया गया और वर्तमान समय में आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण के संरक्षण का मुद्दा भी महत्वपूर्ण बन गया है। राज्यों में होने वाले निवेश के लिए पर्यावरण मंत्रालय से अनुमति लेनी पड़ती है और राज्यों में होने वाले कई निवेशों पर स्थानीय समुदायों के द्वारा पर्यावरण के नियमों के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता रहा है। वर्तमान समय में संघ एवं राज्यों के बीच पर्यावरण के मुद्दे पर अनेक विवाद भी उत्पन्न हो रहे हैं और राज्यों का आरोप है कि पर्यावरणीय मानकों के बहाने संघ सरकार राज्यों में निवेश को हतोत्साहित कर रही है। विशेषकर वे राज्य जहां संघ सरकार से संबंधित दल शासन में नहीं हैं। वर्तमान समय में पर्यावरण के मुद्दे पर

समन्वय एवं सहयोग की आवश्यकता है, क्योंकि पर्यावरण का संरक्षण संघ एवं राज्यों का साझा दायित्व है। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान में सहकारी संघवाद का प्रावधान है।

भारतीय संघीय शासन की प्रकृति

भारतीय संघीय शासन में संघीय शासन की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं, जिनमें शक्ति का विभाजन लिखित एवं सर्वोच्च संविधान तथा स्वतंत्र न्यायपालिका है, परंतु विधायी कार्यपालिकीय एवं वित्तीय शक्तियों के विभाजन में संघ सरकार का पलड़ा भारी है। अत: संघ शासन में केंद्रीयकरण के प्रभावी तत्व विद्यमान हैं। विधायी क्षेत्रों में संघ सरकार के द्वारा राज्य सूची के विषय पर विधि का निर्माण किया जा सकता है। कार्यपालिकीय क्षेत्रों में संघ सरकार राज्यों को निर्देश देता है तथा वित्तीय क्षेत्रों में राज्य, संघ के अनुदान पर निर्भर होते हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि संघ एवं राज्य एक-दूसरे के समकक्ष नहीं हैं, बल्कि राज्य, संघ पर निर्भर हैं। इसलिए आलोचकों ने भारतीय संघीय व्यवस्था को अर्द्ध-संघात्मक कहा है। इसके अतिरिक्त संविधान में आपातकालीन प्रावधान संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन को स्थगित कर देते हैं और संघीय व्यवस्था एकात्मक रुप में कार्य करने लगती है। इसी आधार पर आलोचकों ने कहा कि भारतीय शासन मूलत: एकात्मक है, जिसमें कुछ संघात्मक लक्षण भी विद्यमान हैं।

यह सत्य है कि भारतीय संघीय व्यवस्था में संघ ज्यादा शक्तिशाली है तथा संघ में केंद्रीयकरण की प्रवृत्तियां विद्यमान हैं, परंतु संघीय शासन में संघ एवं राज्यों के बीच सहयोग के महत्वपूर्ण बिंदु भी उल्लिखित हैं। इसीलिए भारतीय संघ को सहकारी संघीय व्यवस्था कहा जाता है। संघीय शासन का मूल्यांकन संविधान के अध्ययन के द्वारा पूर्णत: संभव नहीं है, बल्कि संघीय शासन के वास्तविक कार्यकरण को देखना आवश्यक है। भारत में राज्यों के मुख्यमंत्री स्वतंत्र एवं पृथक् शक्तियों का प्रयोग करते हैं और वे अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिए संघ सरकार पर निर्भर नहीं हैं। इसलिए संघीय शासन प्रकार्यात्मक और राजनीतिक अवधारणा भी है इसे केवल विधि के अध्ययन के द्वारा नहीं समझा जा सकता। उच्चतम न्यायालय ने संविधान की व्याख्या करते हुए कहा है कि संघीय शासन संविधान का आधारभूत लक्षण है। इसलिए भारतीय संघ को अर्द्ध-संघात्मक कहना तार्किक नहीं है, बल्कि भारतीय संघ में संघ सरकार शक्तिशाली है तथा संघीय व्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण लक्षण विद्यमान हैं और आपातकालीन शक्तियों के आधार पर संघीय शासन का मूल्यांकन करना पूर्णत: उचित नहीं है।

भारतीय संविधान में सहकारी संघीय व्यवस्था को अपनाया गया। संविधान में संघ एवं राज्यों की शक्तियों के मध्य विभाजन के साथ सहयोग व समन्वय पर भी महत्वपूर्ण बल दिया गया। भारतीय संघीय शासन की प्रकृति केवल संविधान के अध्ययन के द्वारा समझना कठिन है, बल्कि इसके लिए संघीय व्यवस्था के व्यावहारिक कार्यकरण को भी समझना महत्वपूर्ण है। व्यावहारिक रुप में संघीय प्रणाली का अध्ययन दलीय प्रणाली में परिवर्तन के साथ परिवर्तित हुआ।

संघ एवं राज्यों के बीच राजनीतिक संबंध

1. केंद्रीयकृत संघवाद

संविधान लागू होने के पश्चात् पहले, दूसरे और तीसरे लोक सभा चुनाव में संघ एवं राज्य दोनों में कांग्रेस दल की सरकारों का निर्माण हुआ। इसलिए संघ का प्रधानमंत्री एवं राज्यों का मुख्यमंत्री दोनों ही कांग्रेस दल के होते थे। अत: संघ एवं राज्यों के मध्य सहकारिता और समन्वय देखा गया। संघ एवं राज्यों के मध्य कुछ मामूली विवाद उत्पन्न हुए, परंतु उन विवादों का समाधान कांग्रेस दल के मंच पर सुलझा लिया गया। अत: संघ एवं राज्यों के मध्य विवादों के समाधान के लिए उच्चतम न्यायालय का सहारा नहीं लिया गया, **जिसके निम्नलिखित कारण दिखाई पड़ते हैं** -

- संघीय शासन के आरंभिक दशकों में कांग्रेस का एकदलीय प्रभुत्व था, परंतु कांग्रेस दल में आंतरिक लोकतंत्र कायम था।
- राज्यों के मुख्यमंत्री अत्यधिक स्वायत्त व शक्तिशाली तथा मुख्यमंत्रियों का अपना स्वतंत्र जनाधार था।
- कुछ लोगों के अनुसार, तत्कालीन राज्यों के मुख्यमंत्री कैबिनेट मंत्रियों से भी ज्यादा शक्तिशाली थे।
- राज्यों के मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री की इच्छानुसार या कृपा पर सत्ता में नहीं थे।
- राज्यों के मुख्यमंत्रियों में प्रमुख के. कामराज, बख्शी गुलाम मोहम्मद, एस. के. पाटिल, नीलम संजीव रेड्डी, बिनोदा नंद झा जैसे प्रभावशाली मुख्यमंत्री थे।

रुडॉल्फ और रुडॉल्फ के अनुसार, 'नेहरु युग में राज्यों के मुख्यमंत्रियों को अत्यधिक स्वायत्तता प्राप्त थी एवं केंद्रीय नेतृत्व के द्वारा राज्यों की मांगों में हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। संघीय शासन में कुछ परंपराओं का भी पालन किया गया तथा इसके अंतर्गत् राज्यों में राज्यपाल की नियुक्ति से पहले संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श लिया जाता था। अत: इस काल में संघ एवं राज्यों के मध्य विवाद लगभग नगण्य थे।

2. संघ एवं राज्यों के संबंधों के संघर्ष का युग

वर्ष-1967 में भारतीय दलीय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ तथा पहली बार प्रतिस्पर्धी दलीय प्रणाली का जन्म हुआ। संघ शासन में अब कांग्रेस का दो-तिहाई बहुमत नहीं रहा। पहली बार 9 राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों का एवं पहली बार इन राज्यों में गठबंधन सरकारों का भी निर्माण हुआ। परिणामस्वरुप अब राज्यों में गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्री भी शासन एवं सत्ता में थे, परंतु गैर-कांग्रेसी सरकारों में अत्यधिक अस्थायित्व था। गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों ने संघ सरकार पर भेदभावपूर्ण नीतियों का आरोप लगाया। **संघ एवं राज्यों के मध्य निम्नलिखित बिंदुओं पर विवाद उत्पन्न हुए** -

(i) राज्यपाल की भूमिका

संविधान में राज्यपाल, राज्य सरकार का संवैधानिक कार्यपालिका प्रधान होता है, परंतु राज्यपाल व्यावहारिक रुप में संघ के एजेंट के रुप में कार्य करने लगा। **राज्यपाल ने निम्नलिखित रुपों में अपने पद का दुरुपयोग किया** -

- गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को बर्खास्त किया गया।
- कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को बचाने का प्रयास किया गया।
- गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को सरकार निर्माण के लिए आमंत्रित ही नहीं किया गया।

(ii) अनुच्छेद-200

इसके अंतर्गत् राज्यपाल ने राज्य सरकारों के विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किया, परंतु राष्ट्रपति ने कई विधेयकों पर लंबे समय तक कोई निर्णय ही नहीं किया, क्योंकि संविधान में यह स्पष्ट उल्लिखित नहीं है कि राष्ट्रपति कितने दिनों में विधेयक पर अनुमति प्रदान करेंगे।

(iii) अनुच्छेद-356

संविधान सभा में डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि अनुच्छेद-356 का प्रयोग अंतिम एवं आपवादिक रुप में होना चाहिए, परंतु राज्यपालों ने छोटे मामलों में भी इसका दुरुपयोग किया।

(iv) केंद्रीय सुरक्षा बल भेजने का मामला

संविधान के अनुसार, विधि और व्यवस्था बनाए रखना राज्य सूची का विषय है, लेकिन 70 के दशक में राज्यों में स्थित केंद्रीय प्रतिष्ठानों और संपत्ति की रक्षा के लिए संघ सरकार ने केंद्रीय बलों की तैनाती की, जिसका पश्चिम बंगाल व केरल जैसे राज्यों ने प्रबल विरोध किया।

(v) अखिल भारतीय सेवकों का मुद्दा

सामान्यत: संघीय व्यवस्था का मूल आधार शक्तियों का विभाजन है। इसलिए संघ एवं राज्य सरकारों के लिए अलग-अलग सेवकों का भी प्रबंध होना चाहिए, परंतु भारत में संघ एवं राज्य सेवकों के अलावा अखिल भारतीय सेवा का भी प्रावधान है, जिनकी नियुक्ति संघ सरकार के द्वारा होती है तथा अखिल भारतीय सेवकों पर संघ सरकार का भी नियंत्रण होता है। इनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही तथा इनको सेवा से निष्कासित करने की शक्ति संघ सरकार में निहित है। इसलिए इन्हें राज्यों की शक्तियों के विरुद्ध माना जाता है। इन सेवकों को लेकर संघ एवं राज्यों के बीच सदैव विवाद होते रहते हैं। पिछली यू.पी.ए. सरकार द्वारा तमिलनाडु कैडर की भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) में उपनिदेशक के पद पर नियुक्त किया गया। अर्चना सुंदरम् नामक पुलिस अधिकारी की प्रतिनियुक्ति संघ सरकार के द्वारा की गई, परंतु तमिलनाडु की तत्कालीन मुख्यमंत्री जयललिता ने इनकी नियुक्ति का विरोध किया और इन्हें राज्य सेवा से मुक्त नहीं किया। अखिल भारतीय सेवकों के संदर्भ में यह प्रावधान है कि इनकी प्रतिनियुक्ति संघ सरकार के द्वारा की जा सकती है, परंतु इसके लिए राज्यों की सहमति लेना आवश्यक है। यद्यपि राज्यों की सहमति संघ सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं है। वर्ष-1971 में प्रस्तुत राजमन्नार आयोग की रिपोर्ट में यह स्पष्ट कहा गया है कि अखिल भारतीय सेवाओं को समाप्त कर दिया जाए। उल्लेखनीय है कि राजमन्नार आयोग का गठन तमिलनाडु सरकार ने किया था। डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा में अखिल भारतीय सेवा का महत्व बताते हुए कहा था कि इससे

राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता में वृद्धि होती है और अखिल भारतीय स्तर पर कुशल अभ्यर्थियों का चयन होता है, जिनका दृष्टिकोण अखिल भारतीय होता है।

(vi) केंद्रीय नियोजन

भारतीय शासन प्रणाली में संघ सरकार के द्वारा पूरे भारतीय क्षेत्र के लिए योजना का निर्माण किया जाता है। इसलिए योजना की प्राथमिकता एवं योजना का आकार प्रधानमंत्री के द्वारा निर्धारित होता है। राज्य सरकारों के अनुसार, 'संविधान में वित्त आयोग का प्रावधान है। योजना आयोग के द्वारा वित्त आयोग की शक्तियों को अपहृत कर लिया गया था। इसलिए राजमन्नार आयोग ने योजना आयोग को समाप्त करने की बात कही थी।' वर्तमान में नीति आयोग का गठन योजना आयोग के स्थान पर किया गया है।

(vii) संचार साधनों का प्रयोग

आकाशवाणी और दूरदर्शन पर संघ सरकार का नियंत्रण है। इसलिए राज्य सरकारों ने यह आरोप लगाया कि संघ सरकार के द्वारा इनका उपयोग राजनीतिक रुप में किया जाता है तथा राज्यों को इनका उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जाती।

पॉल ब्रास के अनुसार, 70 के दशक में नेहरु के पश्चात् इंदिरा गांधी की नेतृत्व शैली नेहरु से अलग थी। अत: कांग्रेस के दलीय संगठन में अत्यधिक परिवर्तन हुआ। कांग्रेस दल का छाताधारी स्वभाव विघटित तथा कांग्रेस में आंतरिक लोकतंत्र का अभाव होने लगा। इंदिरा गांधी ने शक्तियों का अत्यधिक केंद्रीयकरण किया, **जिसके परिणामस्वरुप निम्नलिखित परिवर्तन देखे गए** -

- राज्यों के मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री या हाईकमान द्वारा नियुक्त होने लगे।
- अब राज्यों के मुख्यमंत्री का सत्ता में बने रहना प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर हो गया।
- मुख्यमंत्रियों को अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं करने दिया गया।
- अत: अब राज्यों के मुख्यमंत्री विधान सभा के बहुमत के बजाए, हाईकमान की इच्छानुसार नियंत्रित होने लगे।

संघीय प्रावधानों का दुरुपयोग केवल कांग्रेस सरकार द्वारा ही नहीं, अपितु जनता पार्टी सरकार द्वारा भी किया गया। वर्ष-1977 में कांग्रेस का एकदलीय प्रभुत्व संघ शासन में भी समाप्त हो गया। वर्ष-1977 में बनी जनता पार्टी सरकार ने 9 (नौ) कांग्रेस शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों को बर्खास्त कर दिया। जनता पार्टी ने तर्क दिया कि चूंकि कांग्रेस लोक सभा चुनाव में पराजित हो चुकी है, इसलिए राज्यों में बने रहने का उसे अधिकार नहीं है। यह तर्क संघवादी भावना या मान्यताओं के बिल्कुल प्रतिकूल थी, क्योंकि संघीय व्यवस्था में यह संभव है कि संघ में एक दल की सरकार हो, जबकि राज्यों में दूसरे दल की सरकारें। जनता पार्टी के तर्क से ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यों के मुख्यमंत्री का बने रहना विधान सभा के बहुमत पर नहीं, बल्कि प्रधानमंत्री के समर्थन पर निर्भर करता है।

वर्ष-1980 में जब श्रीमती इंदिरा गांधी दोबारा सत्ता में आईं, तो उन्होंने पुन: जनता पार्टी शासित 9 (नौ) राज्यों के मुख्यमंत्रियों को बर्खास्त कर दिया, जो संघीय भावना का सरासर उल्लंघन था। वर्ष-1980 के दशक में संघ में कांग्रेस की वापसी हुई, परंतु राज्यों में गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्री भी प्रभावी हुए, क्योंकि 80 के दशक में भारत में क्षेत्रीय दलों का पुन: उभार हुआ। आंध्र प्रदेश, असम एवं कर्नाटक जैसे राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। इन क्षेत्रीय भावनाओं के परिणामस्वरुप इंदिरा गांधी ने वर्ष-1983 में केंद्र एवं राज्यों के संबंधों की जांच के लिए सरकारिया आयोग का गठन किया।

3. गठबंधन सरकार के युग में संघीय व्यवस्था

संघवाद मूलत: प्रकार्यात्मक (Functional) अवधारणा है, जिसका निर्धारण परिवर्तित दलीय प्रणाली और परिवर्तित सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार निर्धारित होता है। वर्ष-1990 के दशक में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, **जिसमें मुख्य हैं** -

- केंद्र में गठबंधन सरकारों का निर्माण।
- क्षेत्रीय दलों की उभरती प्रभावी भूमिका।
- आर्थिक उदारीकरण।
- विकेंद्रित नियोजन का प्रयोग।

- न्यायपालिका की सजग भूमिका।

वर्ष-1989 से लेकर वर्ष-2009 के लोक सभा चुनाव तक किसी भी एक दल को स्पष्ट और पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो सका और संघ में अल्पमत व गठबंधन सरकारों का निर्माण हुआ, तो वहीं दूसरी ओर इस दशक में शक्तिशाली मुख्यमंत्रियों का उदय हुआ, जिसमें 90 के दशक में बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव, तमिलनाडु में जयललिता (1948-2016) और करुणानिधि, आंध्र प्रदेश के चन्द्रबाबू नायडू की भूमिका अत्यधिक शक्तिशाली मुख्यमंत्रियों में गिनी जाती हैं, जिन्होंने संघ सरकार के निर्माण और कार्यकरण को प्रभावित किया। वर्ष-2000 के बाद पश्चिम बंगाल की ममता बनर्जी, उत्तर प्रदेश में अखिलेश यादव और तमिलनाडु की जयललिता (1948-2016), उड़ीसा के नवीन पटनायक एवं गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री एवं वर्तमान में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अत्यधिक शक्तिशाली मुख्यमंत्री के रुप में उभरे।

अखिल भारतीय दलों में कांग्रेस और भाजपा में भी राज्य के मुख्यमंत्रियों की स्वायत्त और शक्तिशाली भूमिका उभर रही है और इनका अस्तित्व अब हाईकमान पर निर्भर नहीं है। इसलिए संघ एवं राज्यों के मध्य विवाद के बिंदुओं का पटाक्षेप हो रहा है। राज्यपाल की नियुक्ति के पहले संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाता है। वर्ष-1967 तथा वर्ष-1977 के मध्य 39 बार अनुच्छेद-356 का प्रयोग हुआ, जबकि विगत् दशक में अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग के मामले आपवादिक हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल के सिंगूर में इतनी व्यापक हिंसा होने के बावजूद अनुच्छेद-356 का प्रयोग नहीं हुआ, क्योंकि अनुच्छेद-356 का प्रयोग अच्छी सरकार प्राप्त करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। अधिकांश राज्य सरकारों ने सरकारिया आयोग की अनुशंसा को स्वीकार किया है। सरकारिया आयोग के अनुसार, 'राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए संविधान में किसी मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, अपितु संविधान के राजनीतिक दुष्प्रयोगों को प्रतिबंधित करने की आवश्यकता है।' वर्तमान युग में केंद्रीय सैन्य बलों का मामला भी विवाद का बिंदु नहीं है, बल्कि राज्यों द्वारा केंद्रीय सैनिक बलों की मांग की जा रही है। गठबंधन सरकार के युग में राज्यों को ज्यादा वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने के लिए संघ सरकार के द्वारा अनेक उपाय किए गए हैं।

वर्तमान निजीकरण और उदारीकरण के युग में योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग का गठन किया गया है, जिससे अलग-अलग विषयों के विशेषज्ञों के अलावा राज्यों की सहभागिता को भी बढ़ावा दिया जा सके। इस युग में आकाशवाणी और दूरदर्शन के दुष्प्रयोग का मामला भी समाप्त हो गया है। अब प्रत्येक राज्य निजी निवेश आकर्षित करने के लिए प्रयत्न एवं आर्थिक सुधारों के संदर्भ में संघ सरकार से सहायता प्राप्त कर रहे हैं। गठबंधन सरकार के युग में न्यायपालिका की भूमिका भी सजग हुई। केंद्र एवं राज्य के संबंधों पर या अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग के मामलों में बोम्मईवाद (वर्ष-1994) में उच्चतम न्यायालय ने एक ऐतिहासिक निर्णय दिया, **जिसकी मूल विशेषताएं निम्नलिखित हैं** -

- इसका प्रयोग वस्तुनिष्ठ आधार पर होना चाहिए।
- संघीय शासन भारत में सिद्धांत का विषय है, केवल प्रशासनिक सुविधा का मामला भर नहीं।
- अनुच्छेद-356 का प्रयोग अंतिम विकल्प के रुप में होना चाहिए।
- विधान सभा का बहुमत सदन के पटल पर निर्धारित होना चाहिए।
- यदि अनुच्छेद-356 का दुरुपयोग किया गया, तो न्यायपालिका भंग विधान सभा को भी पुनर्जीवित कर सकती है।
- संघीय शासन भारतीय संविधान का आधारभूत लक्षण है।

वर्ष-1990 के पश्चात् भारत में पंचायती राज के रुप में संघवाद के एक तीसरे स्तर का निर्माण हुआ व विकेंद्रित नियोजन को अपनाया गया तथा अब पंचायतों को भी 11वीं अनुसूची में स्पष्ट शक्तियां प्रदान की गई हैं। अब पंचायतें राज्य सरकारों पर इन शक्तियों के हस्तांतरण के लिए दबाव बना रही हैं तथा ज्यादा से ज्यादा वित्तीय अनुदान की मांग भी कर रही हैं। वर्ष-2014 के लोक सभा चुनावों ने गठबंधन का दौर लगभग खत्म कर दिया है, यद्यपि एन. डी. ए. गठबंधन 336 सीटें प्राप्त कर व्यापक बहुमत प्राप्त किया, जिसमें भाजपा अकेले पूर्ण बहुमत में थी। परंतु पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना में क्षेत्रीय दलों ने सफलता प्राप्त किया। अत: वर्ष-1989 से चले आ रहे संघवाद के प्रतिरुप में अब बदलाव आएगा तथा देश सच्चे संघीय प्रावधानों की तरफ आगे बढ़ेगा।

नियोजन एवं संघवाद

योजना आयोग और वित्तीय संबंध

भारतीय संघीय व्यवस्था में संघ अत्यधिक शक्तिशाली है। संविधान में केंद्रीयकरण की प्रवृत्तियां स्पष्ट रुप में परिलक्षित होती हैं। इन केंद्रीयकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने में योजना आयोग और कांग्रेस दल की भूमिका भी महत्वपूर्ण हैं। योजना आयोग पर केंद्र सरकार का नियंत्रण एवं योजना आयोग के द्वारा नियोजित राशियों का वितरण किया जाता था। भारत में योजना आयोग के द्वारा समूचे देश के लिए योजना का निर्माण किया जाता था। योजना की प्राथमिकता एवं आकार दोनों का निर्धारण संघ सरकार द्वारा किया जाता है। इसलिए 70 के दशक में राज्यों ने योजना आयोग को समाप्त करने की मांग भी उठाई तथा इन्होंने तो यहां तक कहा कि 'योजना आयोग, एक विशेषज्ञ संस्था न होकर, एक अर्द्ध-राजनीतिक संस्था है।' वर्तमान उदारीकरण एवं भू-मंडलीकरण के युग में योजना आयोग की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाए जाने लगे, जिसके कारण केंद्र सरकार द्वारा नीति आयोग का गठन किया गया है।

संघीय शासन के अंतर्गत् संघ एवं राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन होता है। संघ सरकार को संघ सूची पर विधि के निर्माण का अधिकार है, जबकि राज्य सरकार को राज्य सूची के विषय पर विधि के निर्माण का अधिकार है। केंद्रीय नियोजन के द्वारा संघ सरकार राज्य सूची के विषयों पर भी योजना का निर्माण करती है, जिससे राज्यों की स्वायत्तता का उल्लंघन होता है। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता था, जो एक राजनीतिक दल का सदस्य भी होता है, जो एक दल विशेष के द्वारा निर्मित योजना अन्य दलों को अस्वीकार्य भी हो सकती हैं। संघ एवं राज्यों के बीच करों के विभाजन तथा अनुदान के निर्धारण के लिए वित्त आयोग का प्रावधान संविधान में किया गया है, जबकि योजना आयोग, वित्त आयोग की शक्तियों का उल्लंघन कर रहा था। इसलिए यह प्रतीत होता है कि केंद्रीय योजना संघीय शासन के प्रतिकूल हैं। **इसके अतिरिक्त केंद्रीय योजना से संबंधित अन्य विवाद निम्नलिखित हैं** -

1. नियोजन के उद्देश्य में अंतर

योजना आयोग के द्वारा योजना की प्राथमिकताएं संघ सरकार की विचारधारा के द्वारा निर्मित होती थीं, जिससे राज्यों ने यह आरोप लगाया कि इसके अंतर्गत् राज्यों की प्राथमिकता को उपेक्षित किया गया। विशेषकर यह आलोचना पश्चिम बंगाल की ज्योति बसु सरकार द्वारा की गई थी। केरल के मुख्यमंत्री ने भी संघ सरकार की योजनाओं पर आपत्ति दर्ज की थी।

2. नियोजन के आकार को लेकर मतभेद

राज्य सरकारों के द्वारा मांगी गई राशि के अनुरुप संघ सरकार के द्वारा इन्हें सहायता प्राप्त नहीं होती। राज्य सरकारों ने यह आरोप लगाया कि उन राज्यों के मुख्यमंत्रियों की योजना का आकार बड़ा होता है, जो संघ सरकार से संबंधित दल के होते हैं।

3. राष्ट्रीय संसाधनों की भागीदारी पर मतभेद

राज्य सरकार एवं संघ के मध्य वित्तीय विभाजन में संघ द्वारा राज्यों को केंद्रीय कोष से कम हिस्सा प्रदान किया जाता है, क्योंकि केंद्र सरकार पर अनेक परियोजनाओं के विकास का दायित्व होता है तथा केंद्र द्वारा प्रायोजित परियोजनाओं पर मतभेद उभर ही जाते हैं, क्योंकि केंद्र सरकार द्वारा ये योजनाएं अखिल भारतीय रुप में चलाई जाती हैं, जबकि राज्य सरकारों की प्राथमिकताएं अलग होती हैं। केंद्र द्वारा संचालित वे योजनाएं, जिनमें राज्य सरकारों को भी अपना अंश लगाना पड़ता है, राज्य सरकारें इससे भी सहमत नहीं हैं। राज्य सरकारों की यह भी मांग थी कि आपदा प्रबंधन की राशि सामान्य नियोजित राशि से अलग प्रदान किया जाए। यह बिंदु भी उल्लेखनीय है कि केंद्रीय संसाधनों का विभाजन राज्यों के मध्य विवाद का मुद्दा बन जाता है। इस संदर्भ में गॉडगिल फॉर्मूले का निर्माण भी किया गया।

4. सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना को लेकर मतभेद

संघ एवं राज्यों के मध्य सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना को लेकर अनेक मतभेद व्याप्त थे। राष्ट्रीय विकास परिषद् में कुछ राज्यों के मंत्रियों ने यह मुद्दा उठाते हुए कहा कि सार्वजनिक उद्यमों को राज्यों में निवेश के लिए एक वस्तुनिष्ठ फॉर्मूले का निर्माण करना चाहिए।

केंद्रीय नियोजन को संघवाद के प्रतिकूल मानना पूर्णतः तार्किक नहीं है। इससे राज्यों के अधिकारों की अवहेलना नहीं होती तथा योजना में राज्यों की सहमति लेने के लिए **राष्ट्रीय विकास परिषद्** है। नीति आयोग एक

विशेषज्ञ संस्था है, इसलिए यह राज्यों के अधिकारों की विरोधी नहीं है, बल्कि इसका मूल उद्देश्य समूचे भारत का समग्र सामाजिक एवं आर्थिक विकास सुनिश्चित करना है।

उदारीकरण का युग और योजना आयोग की भूमिका में परिवर्तन

वर्ष-1991 के बाद भारत में आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाया गया। परिणामस्वरुप भारत में संकेतात्मक नियोजन का प्रयोग किया गया, जो अब सार्वजनिक उद्यमों की प्राथमिकता की नीति की बजाए, निजी उद्योगों की प्राथमिकता की नीति अपनाई गई। संकेतात्मक नियोजन के अंतर्गत् आयात प्रतिस्थापन की आर्थिक नीति को भी परिवर्तित करना पड़ा। उदारीकरण के युग में लाइसेंस कोटा राज की बजाए, निजी क्षेत्रों को बढ़ावा देने की नीति अपनाई गई तथा अब राज्य की भूमिका नियंत्रक की बजाए, सहायताकारी हो गई।

योजना आयोग में नौकरशाहों की नियुक्ति को लेकर भी सवाल उठाए गए। उदारीकरण के बाद भी भारत में नियोजन का अपरिहार्य महत्व है, लेकिन नियोजन की प्रकृति में स्पष्ट परिवर्तन हुआ है। अब आधारभूत संरचना बिजली व बैंकिंग जैसे क्षेत्रों में भी निजी क्षेत्र को प्रवेश दिया जा चुका है। सरकार का स्पष्ट मानना है कि वाणिज्यिक प्रबंध का कार्य निजी क्षेत्रों को सौंपा जाए, जबकि राज्यों का सरोकार सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने वाला होना चाहिए।

आर्थिक सुधारों के इस युग में संघ एवं राज्य सूची के मध्य विद्यमान विवाद भी लुप्त होते जा रहे हैं, क्योंकि आर्थिक सुधारों के द्वितीय चरण में राज्य सूची के अधिकांश विषयों पर आर्थिक सुधार के लिए संघ एवं राज्यों में सहयोग हो रहे हैं। इसलिए केंद्रीयकृत नियोजन, संघवाद के प्रतिकूल नहीं है, क्योंकि भारत में वे समस्याएं अभी भी विद्यमान हैं, जो वर्ष-1990 के पहले विद्यमान थीं। उदाहरण के लिए, गरीबी व निरक्षरता के लिए केंद्रीय नियोजन का प्रयोग किया गया। कुछ लोगों के अनुसार, उदारीकरण के युग में केंद्रीयकृत नियोजन ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश निजी निवेश उन राज्यों में हो रहे हैं, जो संपन्न हैं। जैसे-कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु। जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार एवं राजस्थान अभी भी पिछड़े हैं। इसलिए केंद्रीयकृत नियोजन अत्यधिक आवश्यक है।

वर्ष-1991 के बाद भारत में उदारीकरण व निजीकरण की नीति अपनाई गई, जिसमें नियोजन की भूमिका संदेहास्पद हो गई, क्योंकि उदारीकरण व निजीकरण वाली अर्थव्यवस्था में ज्यादातर निजी क्षेत्र की भूमिका, जबकि राज्यों की भूमिका विकास को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण होती है। ऐसे में योजना आयोग को समाप्त करने की मांग की जाने लगी तथा एक नई संस्था की आवश्यकता महसूस की गई, जो कि वर्तमान में निजीकरण व उदारीकरण की भूमिकाओं में उचित हो। अतः केंद्र सरकार ने नीति आयोग नामक नई संस्था की स्थापना की घोषणा की, जो योजना आयोग के आवश्यक कार्यों को करने के साथ-साथ वर्तमान में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कार्य कर सके।

जी. एस. टी. (Goods and Services Tax, (GST))

संघ एवं राज्यों के वित्तीय संबंध में एक आमूलकारी परिवर्तन का प्रस्ताव किया गया है, जिसके द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं पर एक साथ कर लगाया जाएगा। संविधान में अनुच्छेद-301 में यह उल्लिखित है कि समूचे भारतीय क्षेत्र में व्यापार एवं वाणिज्य का अबाध आवागमन होगा। अतः जी. एस. टी. के सिद्धांत को व्यावहारिक बनाया गया। यह एक अप्रत्यक्ष कर है, जिसके तहत् वस्तुओं एवं सेवाओं पर एक समान कर लगाया जाएगा।

जी. एस. टी. का अभिप्राय

जी. एस. टी. के अंतर्गत् वस्तु एवं सेवाओं पर कर अलग-अलग नहीं लगाए जाएंगे, बल्कि इनके लिए समान रुप में एक कर लगाया जाएगा। संघ के सभी अप्रत्यक्ष करों को संघीय जी. एस. टी. में विलय कर दिया गया है। राज्यों के सभी अप्रत्यक्ष करों को राज्य जी. एस. टी. में विलय कर दिया तथा विभिन्न राज्यों के बीच होने वाले व्यापार के लिए एकीकृत जी. एस. टी. का प्रावधान किया गया है। राज्य के अप्रत्यक्ष करों में पेट्रोलियम पदार्थों पर लागू होने वाले कर एवं शराब पर आरोपित कर को जी. एस. टी. से बाहर रखा गया है। क्योंकि राज्यों ने इन करों को जी. एस. टी. में शामिल करने का विरोध किया था। जी. एस. टी. की दर जी. एस. टी. परिषद् के द्वारा निर्धारित की जाएगी, जिसमें संघ सरकार के वित्त मंत्री एवं राज्यों के वित्त मंत्री सम्मिलित होंगे।

संवैधानिक प्रावधान

101वां संविधान संशोधन अधिनियम के रुप में संसद ने जी. एस. टी. को पारित कर दिया, जो अप्रत्यक्ष करों से संबंधित महत्वपूर्ण कर सुधार है तथा यह पूरे देश को एकल कर ढांचे में परिवर्तित करने का प्रयास है, जो संघ एवं राज्यों के संबंधों को महत्वपूर्ण रुप में प्रभावित करता है। इसके द्वारा सेवा कर का प्रावधान संविधान से हटा लिया जाएगा (अनुच्छेद-268(a)) तथा इसके अतिरिक्त अनुच्छेद-268, 269 एवं 270 में नया शब्द **जी. एस. टी.** जोड़े जाएंगे। जी. एस. टी. लागू होने के बाद इसमें उल्लिखित करों पर कानून बनाने का अधिकार संसद का होगा। जी. एस. टी. के द्वारा अनुच्छेद-279 में भी परिवर्तन किया जाएगा। इसके अंतर्गत् 60 दिनों के अंदर राष्ट्रपति के द्वारा जी. एस. टी. परिषद् (GST Council) की स्थापना भी की जाएगी।

जी. एस. टी. परिषद् (GST Council)

संविधान में यह उल्लिखित है कि संघ एवं राज्यों के बीच का वित्तीय विवाद उच्चतम न्यायालय के न्यायिक पुनरावलोकन के बाहर होगा। 101वें संविधान संशोधन विधेयक के द्वारा समूचे भारत में जी. एस. टी. का प्रावधान किया है, जिसके अनुसार संघ सरकार जी. एस. टी. की दरों का निर्धारण करेगी। इस प्रावधान का राज्य के मुख्यमंत्रियों के द्वारा विरोध किया गया और मुख्यमंत्रियों ने कहा कि यह प्रावधान राज्यों की स्वायत्तता के विरुद्ध है। अतः इस विवाद को हल करने के लिए जी. एस. टी. परिषद् के गठन का प्रस्ताव किया गया।

101वें संविधान संशोधन विधेयक के द्वारा जी. एस. टी. परिषद् के निर्माण का प्रावधान किया गया है, जिसमें संघ सरकार एवं राज्यों के मुख्यमंत्री सम्मिलित होंगे तथा केंद्रीय वित्त मंत्री इसका अध्यक्ष होगा, जिनके द्वारा जी. एस. टी. की दरों का निर्धारण तथा उत्पन्न होने वाले विवादों का भी समाधान किया जाएगा और जी. एस. टी. परिषद् के द्वारा आपसी विचार-विमर्श से जी. एस. टी. के विभिन्न दरों का निर्धारण होगा।

लाभ

वर्तमान में भारत में उत्पादन कर संघ सरकार, जबकि बिक्री कर राज्य सरकार के द्वारा लगाए जाते हैं, जिसके परिणामस्वरुप एक कर पर दूसरा कर आरोपित किया जाता है, जिससे वस्तुओं के दाम बढ़ते हैं। विभिन्न राज्यों के बीच वस्तुओं के आदान-प्रदान में भी प्रवेश कर लगाए जाते हैं, जिसके कारण राज्यों के बीच व्यापारिक आदान-प्रदान में बाधा उत्पन्न होती है। अब इन सभी करों के स्थान पर जी. एस. टी. लगाया जाएगा, जिससे करारोपण की प्रक्रिया आसान होगी तथा राज्यों को भी जी. एस. टी. के माध्यम से सेवा कर लगाने का अधिकार होगा, जिससे कर देने वालों का दायरा भी बढ़ेगा।

हानि

जी. एस. टी. उत्पादन के बजाए, उपभोक्ताओं पर लगने वाला कर है। इसलिए उत्पादक राज्य जैसे गुजरात, तमिलनाडु एवं महाराष्ट्र को इससे हानि होने की संभावना है। उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे बड़े जनसंख्या वाले राज्यों को इससे लाभ होगा, क्योंकि इन राज्यों में उपभोक्ताओं की संख्या ज्यादा है। जी. एस. टी. के कारण पूरे भारत में अप्रत्यक्ष कर की दर एक समान हो जाएगी, जिससे प्रत्येक राज्यों में निवेश के समान अवसर प्राप्त होंगे। क्योंकि वर्तमान में कई राज्यों ने कर की उच्चतर दर अपनाया है, जिससे इन राज्यों में निवेश बाधित होता है। जी. एस. टी. के कारण समूचा भारत एक बाजार के रुप में विकसित हो जाएगा, जिससे व्यापार में वृद्धि होगी।

राज्यों का पक्ष

राज्यों द्वारा पेट्रोलियम उत्पादों पर जी. एस. टी. लागू करने को लेकर असहमति व्यक्त की जा रही है। राज्यों का तर्क है कि उनका आधा राजस्व पेट्रोलियम पदार्थ, शराब पर लगाए जाने वाले कर, पथ कर से प्राप्त होते हैं और जी. एस. टी. लागू होने के बाद राज्यों के करारोपण के स्रोत सीधे प्रभावित होंगे, जो इन्हीं उत्पादों से आते हैं। इनका कहना है कि पेट्रो उत्पादों और प्रवेश कर को जी. एस. टी. से बाहर रखा जाए। राज्यों के अनुसार, राज्यों को होने वाली राजस्व हानि की क्षतिपूर्ति के लिए एक 'जी. एस. टी. क्षतिपूर्ति कोष' बनाया जाए और इसका प्रावधान बाकायदा संविधान में किया जाए तथा 'जी. एस. टी. क्षतिपूर्ति कोष' के आवंटन के लिए स्वतंत्र व्यवस्था होनी चाहिए। राज्यों की यह भी मांग है कि राज्यों को जी. एस. टी. लागू होने की तिथि से पांच साल तक क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिए।

केंद्र सरकार का पक्ष

11 दिसंबर, 2014 को वित्त मंत्री अरुण जेटली ने राज्यों को आश्वस्त करते हुए कहा कि केंद्र सरकार संघवाद की नीति के तहत् राज्यों को सशक्त बनाने और अधिक स्वायत्तता देने के पक्ष में तथा केंद्र क्षतिपूर्ति का प्रावधान कानून में करने के लिए तैयार है। इसलिए राज्यों को राजस्व हानि की आशंका नहीं करनी चाहिए। केंद्रीय बिक्री कर की दरें घटाने के कारण राज्यों को हुए नुकसान की भरपाई के लिए केंद्र सरकार चालू वित्त वर्ष में 11,000 करोड़ रुपए जारी किए हैं। उल्लेखनीय है कि मौजूदा कर प्रणाली से मात्र 15 से 20 प्रतिशत कारोबार ही व्यवस्थित है, जबकि पूरे देश में जी. एस. टी. लागू हो जाने से 70 से 80 प्रतिशत तक कारोबार संगठित (Organised) तरीके से होने लगेगा, जिससे केंद्र एवं राज्य दोनों को जबर्दस्त फायदा होगा। वर्तमान उदारीकरण के युग में विश्व के विभिन्न देशों के बीच मुक्त आवागमन पर बल दिया जा रहा है। इस संदर्भ में संघ एवं राज्यों के बीच जी. एस. टी. के द्वारा वाणिज्य एवं व्यापार में वृद्धि होगी तथा संघ एवं राज्य दोनों सरकारों को लाभ होंगे।

जी. एस. टी. का क्रियान्वयन

वर्तमान उदारीकरण के युग में विश्व के विभिन्न देशों के बीच मुक्त आवागमन पर बल दिया जा रहा है। इस संदर्भ में संघ एवं राज्यों के बीच जी. एस. टी. के द्वारा वाणिज्य एवं व्यापार में वृद्धि होगी तथा संघ और राज्य दोनों सरकारों को लाभ होंगे। 122वें संविधान संशोधन विधेयक को क्रियान्वित करने तथा जी. एस. टी. के दरों के निर्धारण के लिए संसद के द्वारा विधि का निर्माण किया जाएगा, जो 1 अप्रैल, 2017 से लागू हो जाएगा। वर्ष-1991 में आर्थिक उदारीकरण अपनाने के बाद यह भारत में सबसे बड़ा आर्थिक सुधार है। लोक सभा एवं राज्य सभा में 122वें संविधान संशोधन विधेयक को आम सहमति से पारित किया गया। इसके द्वारा संघ एवं राज्यों के बीच आर्थिक सहयोग बढ़ाने में सहायता मिलेगी।

.....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR

संघीय शासन से संबंधित मुद्दे
(Issues Related to Federal Government)

राज्यों के मध्य विवाद

भारत जैसे विशाल देश में संघीय शासन प्रणाली का प्रयोग विविधता एवं एकता में सामंजस्य बनाए रखने के लिए किया गया। भारतीय संघीय व्यवस्था में राज्यों के मध्य अनेक विवाद पाए जाते हैं। संविधान ने राज्यों के पुनर्गठन का अधिकार संसद को सौंपा है। अनुच्छेद-3 में स्पष्ट वर्णित है कि संघ सरकार द्वारा राज्यों के नाम, भू-भाग एवं सीमा में परिवर्तन तथा नए राज्यों का निर्माण भी किया जा सकता है। इसके लिए राज्य विधान सभाओं से सहमति ली जाती है, लेकिन राज्यों की सहमति लेना संघ सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं है।

1. बेलगांव का विवाद

बेलगांव को लेकर महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के मध्य अभी भी विवाद है। वर्ष-1956 के राज्य पुनर्गठन के पश्चात् बेलगांव कर्नाटक का भाग बना दिया गया, लेकिन महाराष्ट्र अभी भी इसे प्राप्त करने के लिए आंदोलन कर रहा है। बेलगांव के बहुसंख्यक लोग मराठी भाषी हैं, जबकि यह चारों ओर से कन्नड़ भाषी लोगों से घिरा हुआ है।

2. कॉसरगोड विवाद

वर्ष-1956 के राज्य पुनर्गठन के पश्चात् महाजन आयोग ने कॉसरगोड को कर्नाटक को सौंपने का निर्देश दिया, जिसे केरल मानने को तैयार नहीं है। संसद में कर्नाटक एवं महाराष्ट्र के सांसदों ने इसका जोरदार विरोध किया।

3. चण्डीगढ़ का विवाद

पंजाबी सूबे के निर्माण के पश्चात् राज्यों में सीमा निर्धारण के लिए शाह आयोग की स्थापना हुई। इस आयोग ने चण्डीगढ़ को हरियाणा का भाग माना, लेकिन अकाली दल ने इसका कड़ा विरोध किया। संघ सरकार ने एक मध्यम मार्ग अपनाते हुए चण्डीगढ़ को एक संघ शासित क्षेत्र घोषित कर दिया। वर्ष-1970 के दशक में इंदिरा गांधी ने समस्या के समाधान के लिए एक सूत्र प्रस्तुत किया, **जिसके अनुसार** -

- चण्डीगढ़, पंजाब को सौंप दिया जाए।
- फजलिका और अगोहर तहसीलें हरियाणा को सौंप दिया जाए, लेकिन पंजाब में अकाली दल ने इसका कड़ा विरोध किया।

4. असम और नागालैण्ड के मध्य का विवाद

नागालैण्ड, मेघालय एवं मिजोरम जैसे राज्यों का निर्माण असम से हुआ है। इसलिए इन सभी राज्यों का आपस में किसी न किसी रुप में सीमा विवाद बना हुआ है। असम और नागालैण्ड के मध्य रंगापानी क्षेत्र को लेकर विवाद है। नागालैण्ड सरकार ने असम के 4,973 वर्ग किमी. क्षेत्र पर अपना दावा प्रस्तुत किया है तथा इस विवाद को सुलझाने के लिए वी. के. सुंदरम् आयोग की स्थापना हुई, लेकिन नागालैण्ड ने इसे अस्वीकृत कर दिया। असम और मेघालय के मध्य लंगपीह के अतिरिक्त जिंगीराम क्षेत्र पर भी विवाद है तथा असम और अरुणाचल प्रदेश के मध्य पासीघाट क्षेत्रों के मध्य भी सीमा विवाद है।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद-262 के अंतर्गत् अंतर्राज्यिक नदियों एवं जल स्रोतों से संबंधित विवादों के समाधान के संबंध में प्रावधान किया गया है तथा संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अंतर्राज्यिक नदी, जल स्रोत या नदी जल के प्रयोग एवं उसके वितरण अथवा नियंत्रण के संबंध में पैदा होने वाले विवादों के समाधान के लिए प्रावधान निर्मित कर सकती है (अनुच्छेद-262(1)) और संसद, विधि बनाकर उच्चतम न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों को जल विवाद में हस्तक्षेप करने से रोक सकती है, (अनुच्छेद-262(2))।

संसदीय विधि

संसद ने अनुच्छेद-262 के अनुसार, नदी जल विवादों को सुलझाने के लिए अंतर्राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 का निर्माण किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत् राज्य सरकारें किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए संघ सरकार से न्यायाधिकरण की स्थापना का अनुरोध कर सकती हैं। संघ सरकार के द्वारा एक वर्ष की अवधि में अधिकरण का गठन किया जाएगा तथा अधिकरण तीन वर्षों की अवधि में अपना निर्णय देगा और न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया निर्णय विवादरत पक्षों को मानना होगा।

संरचना

अधिकरण में एक अध्यक्ष एवं दो अन्य सदस्य शामिल होंगे, जिनका मनोनयन उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के द्वारा होगा। अध्यक्ष, उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश एवं सदस्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होंगे। अधिकरण के अतिरिक्त संसदीय अधिनियम में जल बोर्ड के गठन का भी प्रावधान है, परंतु अभी तक जल बोर्ड का गठन नहीं हुआ है, जिससे जल के साझे उपयोग और प्रबंध में मूल समस्याएं बनी हुई हैं। संसद के द्वारा नदी जल बोर्ड के गठन का प्रावधान भी किया गया था, जिसका गठन आज तक नहीं हो सका।

समाधान

सरकारिया आयोग ने भी राज्यों के मध्य जल विवाद को सुलझाने के लिए एक विशेष समय सीमा में संघ सरकार द्वारा न्यायाधिकरण की स्थापना की सिफारिश की थी, जिसमें आयोग ने कहा था कि न्यायाधिकरण के निर्णय राज्यों पर बाध्यकारी रुप में लागू हों, परंतु राज्यों के मध्य अभी भी विवाद कायम हैं। विचारकों के अनुसार, इस संदर्भ में संघ सरकार की शक्तियां अभी भी अपर्याप्त हैं, क्योंकि इन विवादों को सुलझाने के लिए संघ के द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता। न्यायाधिकरण के निर्णय को लागू करना राज्यों का अधिकार है। इस समस्या के समाधान के लिए राज्याध्यक्ष समिति ने नदी जल विवादों को संघ सरकार को सौंपने की अनुशंसा की। अत: नदी जल विवादों को संघ सूची या समवर्ती सूची में सम्मिलित करने का समर्थन किया गया, क्योंकि अनुच्छेद-262 के उपबंधों के अनुसार, 'न्यायाधिकरण की स्थापना राज्यों की सहमति के पश्चात् ही होती है।' उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि भारतीय संघीय व्यवस्था में शक्तिशाली संघ राष्ट्रीय हितों और आवश्यकताओं के अनुरुप है। **प्रमुख नदी जल विवाद इस प्रकार हैं** -

1. पंजाब एवं हरियाणा के मध्य

पंजाब सूबे के निर्माण के बाद पंजाब एवं हरियाणा के मध्य रावी एवं व्यास के जल बंटवारे की समस्या अभी भी विद्यमान है। पंजाब एवं हरियाणा के मध्य सतलुज, यमुना कैनाल लिंक का निर्माण नहीं हो पा रहा है। कुछ वर्ष पूर्व पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह की सरकार ने जल विवाद के समझौते को एकतरफा रोककर रद्द कर दिया। परिणामस्वरुप हरियाणा सरकार ने उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की तथा उच्चतम न्यायालय ने पंजाब सरकार को सतलुज, यमुना कैनाल लिंक पूर्ण करने का निर्देश दिया। हरियाणा सरकार के द्वारा अपने क्षेत्र में नहर का निर्माण कर दिया गया है, परंतु पंजाब सरकार ने इसका आंशिक भाग निर्मित किया था। परंतु वर्ष-2016 में पंजाब सरकार के द्वारा अपने भाग में निर्मित नहर को समतल करने का निर्देश दिया और पंजाब सरकार के अनुसार वह हरियाणा के लिए पानी प्रदान नहीं करेगा, जिससे यह प्रतीत होता है कि जल विभाजन का मुद्दा सदैव राजनीतिक बन जाता है।

2. कावेरी जल विवाद

कावेरी जल विवाद का मुद्दा तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक एवं पांडिचेरी के मध्य का है। वर्ष-1924 के समझौते के अनुसार कावेरी के जल का बंटवारा किया गया था, लेकिन वर्ष-1975 में यह समझौता समाप्त हो गया। परिणामस्वरुप कर्नाटक एवं तमिलनाडु के मध्य जल बंटवारे को लेकर एक लंबा संघर्ष हुआ। वर्ष-1990 में विवाद के समाधान के लिए एक अधिकरण का गठन किया गया, जिसने 16 वर्षों बाद वर्ष-2016 में अपना निर्णय दिया, परंतु कर्नाटक के द्वारा निर्णय लागू करने से इंकार कर दिया गया। परिणामस्वरुप उच्चतम न्यायालय के द्वारा कर्नाटक सरकार को कावेरी नदी के जल छोड़ने के लिए निर्देश दिया गया, जिसके बाद कर्नाटक में हिंसात्मक घटनाएं भी हुईं, जिससे यह प्रतीत होता है कि जल विवादों के समाधान के वर्तमान तरीकों में परिवर्तन की आवश्यकता है और अधिकरण में न्यायाधीशों के बजाए, जल बंटवारे से जुड़े हुए एक विशेषज्ञों की टीम को शामिल करने की आवश्यकता है।

3. नर्मदा नदी जल बंटवारा

नर्मदा नदी के जल विवाद को लेकर गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं महाराष्ट्र के मध्य विवाद उत्पन्न हुआ। इस विवाद को सुलझाने के लिए एक न्यायाधिकरण की स्थापना हुई। वर्ष-1969-1978 में न्यायाधिकरण ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके पश्चात् इस विवाद का समाधान हो गया।

जल विवाद एवं न्यायपालिका

संसदीय विधि के द्वारा नदी जल विवाद को उच्चतम न्यायालय के संघीय अधिकारिता से बाहर रखा गया है, परंतु न्यायाधिकरण के निर्णय के बाद राज्य इसे लागू करने से इंकार कर देते हैं। इसलिए विवादरत पक्ष न्यायाधिकरण के निर्णयों को लागू कराने के लिए उच्चतम न्यायालय का सहारा लेते हैं।

राज्यों का गठन

भारत में अंग्रेजों के शासन के दौरान भारत के लगभग एक-तिहाई भू-भाग पर भारत के देशी रियासतों का नियंत्रण तथा आंतरिक प्रशासन के लिए देशी रियासतें पूर्णत: स्वतंत्र थीं, परंतु विदेशी, रक्षा और संचार मामलों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त शेष भारत के भू-भाग पर ब्रिटिश सरकार का सीधा नियंत्रण था और आंतरिक एवं बाहरी मामलों पर ब्रिटिश सरकार का ही नियंत्रण था। 15 अगस्त, 1947 को भारत ब्रिटिश शासन के नियंत्रण से स्वतंत्र हो गया तथा इसके साथ ही देशी रियासतों से भी ब्रिटिश शासन का नियंत्रण समाप्त हो गया। इसलिए देशी रियासतों के समक्ष भारतीय संघ में विलय करने का विकल्प था तथा उन्हें पाकिस्तान राज्य में भी विलय की स्वतंत्रता थी अथवा देशी रियासतें अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी बनाए रख सकती थीं। स्वतंत्र भारत में देशी रियासतों की संख्या-552 थी, जिसमें हैदराबाद एवं कश्मीर जैसी बड़ी देशी रियासतें थीं, जबकि कुछ देशी रियासतें गांव के आकार की थीं। स्वतंत्र भारत के समक्ष देशी रियासतों का भारत में विलय सबसे बड़ी चुनौती थी। भारतीय संघ में देशी रियासतों के विलय के लिए **सरदार पटेल के द्वारा तीन चरणों वाली प्रक्रिया अपनाई गई** -

- 216 देशी रियासतों को उनके भौगोलिक रुप में निकट के राज्यों में शामिल कर लिया गया, जिसे मूल संविधान के भाग-क वाले राज्य क्षेत्र में शामिल किया गया, जिसके अंतर्गत् उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा जनवरी, 1950 में कूच बिहार का भारतीय संघ में विलय किया गया।
- अनेक देशी रियासतों को आपस में मिलाकर नए राज्यों का निर्माण किया गया। उदाहरण के लिए, सौराष्ट्र में काठियावाड़ एवं अन्य देशी रियासतों को शामिल किया गया। लगभग 275 देशी रियासतों को मिलाकर पांच नए राज्यों का निर्माण किया गया, जिन्हें मूल संविधान के भाग-ख में स्थान दिया गया है।
- 61 देशी रियासतों को केंद्र शासित क्षेत्र के रुप में शामिल किया गया और उन्हें मूल संविधान के भाग-ग में स्थान दिया गया।

भारत में देशी रियासतों के विलय में सबसे बड़ी चुनौती जम्मू एवं कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद को लेकर उत्पन्न हुए, क्योंकि इन देशी रियासतों के राजा अपने राज्यों को स्वतंत्र बनाए रखना चाहते थे। इसलिए 15 अगस्त, 1947 के बाद इन्हीं देशी रियासतों के एकीकरण का प्रयत्न किया गया। जम्मू एवं कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने 26 अक्टूबर, 1947 को भारत के विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया तथा जूनागढ़ के दीवान शाहनवाज भुट्टो ने 8 नवंबर, 1947 को भारत में विलय से संबंधित दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर दिया, जबकि हैदराबाद का विलय 18 सितंबर, 1948 को हुआ।

विभिन्न उपनिवेशों का भारत में विलय

देशी रियासतों के विलय के बाद भारतीय सरकार के द्वारा फ्रांसीसी सरकार के नियंत्रण वाले भारतीय क्षेत्रों तथा पुर्तगाली सरकार द्वारा नियंत्रित भारतीय क्षेत्रों के भारत में विलय का प्रयत्न किया गया। स्वतंत्रता के बाद पाण्डिचेरी, माहे, यनम, कराईकल तथा चन्द्र नगर जैसे क्षेत्रों का भारत में विलय 19 जून, 1949 के बाद जनमत संग्रह के द्वारा हुआ। पुर्तगाली शासन का गोवा, दमन एवं दीव तथा दादर एवं नगर हवेली पर नियंत्रण था। इन क्षेत्रों के विलय के लिए भारत को लंबा इंतजार करना पड़ा। दादर एवं नगर हवेली का विलय भारत में वर्ष-1954 में हुआ, जबकि गोवा, दमन और दीव का विलय वर्ष-1961 में हुआ, गोवा के विलय हेतु भारत द्वारा सैन्य अभियान चलाया गया, जिसे 'ऑपरेशन विजय' के नाम से जाना जाता है। लक्षद्वीप पर वर्ष-1947 के बाद भारत का नियंत्रण स्थापित हुआ तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह को भी भारतीय क्षेत्र में मिला लिया गया।

कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव में भारत में ढीले-ढाले संघीय सरकार की स्थापना का प्रावधान था। परंतु देश के सांप्रदायिक विभाजन के पश्चात् कैबिनेट मिशन की मान्यताओं का परित्याग कर दिया गया। राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता बनाए रखने तथा देश के चहुंमुखी आर्थिक विकास के लिए शक्तिशाली केंद्रीय सरकार का समर्थन किया गया। स्वतंत्रता के पश्चात् देशी रियासतों का एकीकरण राष्ट्र के समक्ष प्रमुख चुनौती थी। इसी समय लोगों ने भाषाई आधार पर राज्यों की मांग आरंभ कर दी। यह बिंदु ध्यान देने योग्य है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वर्ष-1920 के अधिवेशन में यह स्वीकार किया गया था कि स्वतंत्र भारत में राज्यों का पुनर्गठन भाषाई आधार पर होगा, परंतु स्वतंत्रता के पश्चात् दर आयोग और जे. वी. पी. (J.V.P.) समिति ने भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता प्रभावित होती, परंतु मद्रास प्रांत में रह रहे तेलगू भाषी लोगों ने अपने लिए भाषा के आधार पर नए राज्य के गठन की मांग की। इसके लिए रामालु नामक एक नेता ने अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल शुरु कर दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। परिणामस्वरुप बढ़ते जनांदोलनों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने भाषा के आधार पर आंध्र प्रदेश नामक राज्य का गठन किया। इसके फलस्वरुप संघ सरकार ने फजल अली की अध्यक्षता में राज्य पुनर्गठन आयोग का निर्माण किया तथा आयोग ने भारत में राज्यों के पुनर्गठन के लिए **निम्नलिखित आधार प्रस्तुत किया** -

पुनर्गठन का पहला चरण

- राज्य की एकता एवं अखण्डता बनाए रखना।
- राज्य का निर्माण प्रशासनिक, आर्थिक व वित्तीय दृष्टिकोण से उपयुक्त हो।
- पंचवर्षीय योजनाओं को प्रभावी रुप में क्रियान्वित करना।
- राष्ट्रीय विकास में वृद्धि करना।

सैद्धांतिक रुप में 'फजल अली आयोग' ने भाषा को राज्यों के पुनर्गठन का एकमात्र आधार नहीं माना, लेकिन व्यावहारिक रुप में भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण को स्वीकार कर लिया गया। आयोग ने बंबई एवं पंजाब प्रांत को विभाजित करने की मांग को स्वीकार नहीं किया। आयोग की अनुशंसा के अनुसार, भारत में राज्यों का पुनर्गठन करते हुए 14 (चौदह) नए राज्यों का निर्माण किया गया। वर्ष-1960 में बंबई प्रांत को विभाजित करके महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य का निर्माण कर दिया गया। वर्ष-1966 में पंजाब सूबे की मांग को स्वीकार करके पंजाब एवं हरियाणा नामक दो राज्यों का निर्माण किया गया। पंजाब एवं हरियाणा का गठन 'शाह आयोग' की सिफारिशों पर किया गया। राज्यों के इस पुनर्गठन से भारत के समक्ष विद्यमान भाषाई समस्या का प्रभावी हल हो गया, जो भारतीय लोकतंत्र के लिए एक बड़ी उपलब्धि मानी गई।

पुनर्गठन का द्वितीय चरण

भारत में राज्यों के एकीकरण एवं राज्य निर्माण के संबंध में उत्तर-पूर्वी राज्यों की समस्या भिन्न है। स्वतंत्रता के पश्चात् फिजो ने 'नागा आंदोलन' प्रारंभ किया। लालडेंगा ने मिजो क्षेत्र को अलग राज्य बनाने की मांग उठाई। उत्तरी-पूर्वी राज्यों की संवेदनशील स्थिति को देखते हुए असम राज्य से एक अलग नागालैण्ड राज्य की स्थापना की गई, (वर्ष-1963 में)। लेकिन नागालैण्ड के निर्माण में फजल अली आयोग के मानदंडों को स्वीकार या प्रयोग नहीं किया गया, बल्कि कुछ नवीन प्रवृत्तियां देखने को मिलीं, **जो निम्नलिखित हैं** -

- नागालैण्ड का निर्माण भाषाई आधार पर नहीं किया गया।
- राज्य पुनर्गठन आयोग ने विशाल राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया था। असम छोटा राज्य था, जिससे नागालैण्ड का निर्माण किया गया।
- नागालैण्ड आर्थिक रुप में भी स्वायत्त नहीं था और अभी भी यह संघ सरकार की आर्थिक सहायता पर निर्भर है।
- नागालैण्ड के निर्माण का मूल कारण अलगाववादी आंदोलन और आंतरिक उपद्रव था। नागालैण्ड के पश्चात् मिजोरम, मणिपुर एवं त्रिपुरा जैसे अन्य छोटे राज्यों का भी निर्माण किया गया।
- वर्ष-1971 में पूर्वोत्तर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। इन क्षेत्रों में राज्यों की मांग का आधार स्थानीय संस्कृति तथा विकास था। इस अधिनियम के तहत् मणिपुर, त्रिपुरा तथा मेघालय को राज्यों के प्रवर्ग में सम्मिलित किया गया तथा मिजोरम व अरुणाचल प्रदेश के नाम से दो संघ शासित क्षेत्रों का पुनर्गठन किया गया। 22वें संविधान संशोधन के

तहत् मेघालय को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान कर दिया गया तथा बाद में मिजोरम तथा अरुणाचल प्रदेश (वर्ष-1987) को भी पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया गया।

अत: भारत में छोटे राज्यों के निर्माण के पक्ष में निरपेक्ष रुप में तर्क देना कठिन है, बल्कि इसे विशेष संदर्भ में समझना होगा। इसलिए छोटे राज्यों के लिए छोटे राज्यों की मांग औचित्यपूर्ण नहीं है। दलीय स्वार्थों के आधार पर छोटे राज्यों की मांग को स्वीकार करना कठिन है, **क्योंकि छोटे राज्यों के निर्माण से निम्नलिखित समस्याएं उत्पन्न होती हैं**-

- छोटे राज्यों के निर्माण से अगले छोटे राज्यों की मांग प्रारंभ हो जाती हैं।
- एक क्षेत्र में छोटे राज्यों का निर्माण अन्य क्षेत्रों में भी छोटे राज्यों की मांग को प्रेरित करता है।

पुनर्गठन का तीसरा चरण

भारत में राज्यों के पुनर्गठन के पहले चरण में सांस्कृतिक मुद्दों को प्राथमिकता दी गई, परंतु दूसरे चरण में राज्यों के विकास का मुद्दा प्राथमिक हो गया। वर्ष-1990 के पश्चात् उदारीकरण एवं निजीकरण के युग में सभी राज्यों ने आर्थिक विकास की नई रणनीति का निर्माण किया। वर्ष-2000 में भारत में तीन नए राज्यों (छत्तीसगढ़, उत्तराखंड एवं झारखंड) का निर्माण किया गया। **इन राज्यों के निर्माण में निम्नलिखित आधारों का प्रयोग किया गया** -

- इसका निर्माण उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं बिहार जैसे विशाल राज्यों से हुआ।
- तुलनात्मक रुप में तीनों क्षेत्र आर्थिक रुप में पिछड़े थे।
- इस क्षेत्र के अधिकांश लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे थे।
- इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों का लाभ स्थानीय लोगों को नहीं मिल रहा था।
- इन तीनों क्षेत्रों की अपनी पृथक् भौगोलिक पहचान भी है।
- इन तीनों राज्यों की सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहचान भी साझी है।

छोटे राज्यों का निर्माण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-2 में यह उल्लिखित है कि संसद के द्वारा विधि का निर्माण करके किसी भी नए राज्य को संघ में सम्मिलित किया जा सकता है। अनुच्छेद-3 में यह उल्लिखित है कि संसद के द्वारा विधि का निर्माण करके किसी राज्य के भू-भाग को अलग करके नए राज्यों का निर्माण भी किया जा सकता है अथवा दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य का निर्माण हो सकता है अथवा किसी राज्य के क्षेत्र को मिलाकर नए राज्य का निर्माण हो सकता है। किसी राज्य के क्षेत्रफल में वृद्धि की जा सकती है अथवा क्षेत्रफल कम किया जा सकता है। राज्य की सीमा में परिवर्तन और राज्य के नाम को भी बदला जा सकता है। संसद में ऐसा विधेयक प्रस्तुत करने से पहले राष्ट्रपति की पूर्व अनुशंसा आवश्यक है। राष्ट्रपति के द्वारा संबंधित राज्य से भी परामर्श किया जाएगा। यद्यपि संविधान में इस परामर्श की समय सीमा का उल्लेख नहीं है तथा यह परामर्श मानना राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी नहीं है।

पक्ष में तर्क

- लोकतांत्रिक शासन का अभिप्राय, बहुमत जनता का शासन है और वर्तमान प्रतिनिधिवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था में राज्य छोटे होंगे, तो आम लोगों का जनप्रतिनिधियों पर बेहतर नियंत्रण होगा। प्रशासनिक कार्यालय लोगों के निकट होंगे तथा उच्च न्यायालय में प्रवेश के लिए लंबी दूरी तय नहीं करनी होगी। अत: छोटे राज्य लोकतंत्र के मानकों के अनुरुप हैं।
- छोटे राज्य प्रशासन के संचालन के दृष्टिकोण से बेहतर होते हैं, इसलिए भारत में हरियाणा, पंजाब, गुजरात, हिमाचल और गोवा प्रभावी विकास दर्ज कर रहे हैं, जबकि उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे राज्य अभी भी पिछड़े हुए हैं और यहां आधारभूत संरचना का भी अभाव है। छोटे राज्यों के द्वारा आम जनता और शासन के मध्य बेहतर संबंध स्थापित होता है।
- भारत में अत्यधिक भौगोलिक विविधता विद्यमान है, इसलिए मौसम एवं कृषि उत्पादों में भी अंतर पाया जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों के लिए विकास का मानक मैदानी भागों के समान नहीं हो सकता, इसलिए छोटे राज्यों के द्वारा

योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन संभव है। सरकार के प्रदर्शन और कुशलता में भी अभिवृद्धि होती है, क्योंकि इनका आकार छोटा होता है तथा इनमें भौगोलिक एवं सांस्कृतिक रुप में भी समरुपता पाई जाती है।

- छोटे राज्यों के द्वारा आर्थिक विकास के साथ-साथ संस्कृति एवं भाषा का भी संरक्षण संभव है। नए राज्य अपने लिए नई आधिकारिक भाषा अपना सकते हैं तथा राज्य के रोजगार में स्थानीय लोगों को प्राथमिकता दे सकते हैं। भारत जैसे विशाल उप-महाद्वीपीय आकार वाले देश में छोटे राज्यों की मांग क्षेत्रवादी आकांक्षाओं का प्रतीक है।

विपक्ष में तर्क

- भारत के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित राज्य अत्यधिक छोटे हैं, परंतु वे भी पिछड़े हैं। केवल छोटे राज्यों के कारण ही आर्थिक विकास नहीं होता, बल्कि आर्थिक विकास के लिए अन्य कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं। हरियाणा के विकास का मूल कारण इसकी दिल्ली से निकटता और बेहतर आधारभूत संरचनाएं हैं। इसलिए आकार एवं आर्थिक विकास के मध्य कोई सीधा संबंध निर्मित करना कठिन है।
- छोटे राज्यों के निर्माण से राजनीतिक अस्थायित्व में वृद्धि होती है। विधायकों की संख्या कम होने के कारण कुछ विधायकों के दल बदलने से सरकार को गिरने का खतरा होता है जैसे-गोवा, झारखंड एवं मेघालय जैसे छोटे राज्यों में अत्यधिक राजनीतिक अस्थिरता पाई जाती है।
- छोटे राज्यों के निर्माण से भारी प्रशासनिक एवं वित्तीय बोझ पड़ता है। राज्य के निर्माण के बाद उनके लिए अलग सचिवालय की स्थापना करनी होगी तथा उच्च न्यायालय का निर्माण भी आवश्यक होगा। वर्तमान उदारीकरण के युग में सरकार के द्वारा राजकोषीय प्रबंधन बेहतर करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिए नए राज्यों के निर्माण पर होने वाले प्रशासनिक खर्च के बजाए, सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर बल देने की आवश्यकता है।
- नए राज्य के निर्माण के बाद दूसरे नए राज्य की मांग आरंभ हो जाती है। इसलिए यह अंतहीन चलने वाली प्रक्रिया है और भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में अनेक राज्यों की मांग हो रही है और नए राज्य भी सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में सक्षम नहीं हैं। इसलिए पंचायती राज को सुदृढ़ करना बेहतर विकल्प है। वर्तमान सूचना क्रांति एवं पंचायती राज के युग में विकास स्थानीय स्तर पर पंचायतों के द्वारा प्रभावी रुप में संभव है।
- प्रशासनिक विकेंद्रीकरण के द्वारा लोगों की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। नए राज्य के निर्माण के बाद जल विभाजन के संबंध में विवाद और राजधानी के निर्माण को लेकर भी खींचतान शुरु हो जाती है। भारत में उच्च न्यायालयों की अलग निकाय की स्थापना के द्वारा लोगों को न्याय प्रदान किए जा सकते हैं तथा पारदर्शी प्रशासन के द्वारा लोगों का विकास संभव है।

तेलंगाना राज्य का गठन

वर्ष-2014 में लोक सभा चुनावों के पहले 29वें राज्य के रुप में तेलंगाना राज्य के गठन की घोषणा कर दी गई। आंध्र प्रदेश का विभाजन करते हुए दो नए राज्यों सीमांध्र तथा तेलंगाना राज्य का गठन किया गया। उल्लेखनीय है कि आंध्र प्रदेश भाषा के आधार पर गठित होने वाला पहला राज्य था, परंतु बदलती परिस्थितियों के बाद विकास तथा पिछड़ेपन के आधार पर आंध्र प्रदेश को दो भागों में विभाजित होना पड़ा। आंध्र प्रदेश का विभाजन 'श्री कृष्णा आयोग, 2010' की सिफारिशों पर किया गया। आयोग ने पंजाब व हरियाणा मॉडल पर आंध्र प्रदेश के विभाजन की सिफारिश की, जिसमें सीमांध्र एवं तेलंगाना दो राज्य होंगे तथा हैदराबाद 10 वर्षों तक दोनों की संयुक्त राजधानी होगी।

16वीं लोक सभा के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने अपने घोषणा-पत्र में गोरखालैंड को एक पृथक् राज्य का दर्जा देने का समर्थन किया तथा तेलंगाना राज्य की मांग का भी समर्थन किया था। उत्तर प्रदेश की भूतपूर्व मुख्यमंत्री मायावती ने उत्तर प्रदेश को तीन भागों में विभाजित करने का समर्थन किया है। इसलिए व्यावहारिक रुप में छोटे राज्यों की मांग अभी भी कायम है, लेकिन इन मांगों को स्वीकार करते समय प्रशासनिक कुशलता और राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का भी ध्यान रखना होगा।

स्वायत्तता की मांग

भारत, एक विविधतापूर्ण विशाल देश है और ऐसे देश में क्षेत्रीय आकांक्षाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। स्वतंत्रता के पश्चात् लोगों ने भाषाई आधार पर राज्यों की मांग की। इन राज्यों की मांग के पश्चात् क्षेत्रीय दलों की सरकारों ने स्वायत्तता की मांग उठाई। स्वायत्तता एक अनेकार्थी संकल्पना है, जिसका प्रयोग अलग-अलग तरह से किया

जाता है। स्वायत्तता का सामान्य अभिप्राय, संविधान द्वारा प्रदत्त राज्य की शक्तियों में संघ सरकार हस्तक्षेप न करे तथा राज्यों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध हों, साथ ही संविधान के प्रावधानों का दुरुपयोग न हो। स्वायत्तता का संस्थागत रुप में पहली मांग तमिलनाडु की डी. एम. के. सरकार ने उठाई और सरकार ने केंद्र एवं राज्य संबंधों पर 'राजमन्नार आयोग' की स्थापना की। आयोग ने राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए संविधान में परिवर्तन का समर्थन किया। आयोग के अनुसार, भारतीय संघीय प्रणाली में बढ़ती हुई **केंद्रीयकरण की प्रवृत्तियों के मूल कारण निम्नलिखित हैं** -

- संविधान में संघ सरकार को अधिक शक्तियां प्राप्त हैं।
- संघ एवं राज्य में एक ही दल का शासन।
- वित्तीय रुप में राज्य की संघ सरकार पर निर्भरता।
- केंद्रीयकृत नियोजन एवं योजना आयोग की भूमिका।

1. राजमन्नार आयोग

राजमन्नार समिति का गठन तमिलनाडु सरकार द्वारा वर्ष-1969 में किया गया था। इस समिति ने वर्ष-1971 में अपनी रिपोर्ट तमिलनाडु सरकार को सौंपी, **जिनकी सिफारिशें इस प्रकार हैं** -

- अंतर्राज्यीय परिषद् की स्थापना, (अनुच्छेद-263)।
- वित्त आयोग को स्थाई संस्था के रुप में गठन किया जाए।
- योजना आयोग को समाप्त कर इसके स्थान पर एक सांविधिक संस्था का निर्माण किया जाए।
- अनुच्छेद-356, 357 एवं 365 जो राष्ट्रपति शासन से संबंधित हैं, को पूर्णतः समाप्त किया जाए।
- संविधान के इस प्रावधान को समाप्त किया जाए, जिसमें यह उल्लिखित है कि राज्य के मुख्यमंत्री एवं मंत्रिपरिषद्, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद पर बने रहेंगे।
- संघ सूची एवं समवर्ती सूची के कुछ विषय राज्य सूची में हस्तांतरित किए जांए।
- अवशिष्ट शक्तियां राज्य सरकारों को सौंप दिया जाए।
- अखिल भारतीय सेवाओं को पूर्णतः समाप्त किया जाए।

2. आनंदपुर साहिब प्रस्ताव

वर्ष-1973 में अकाली दल पंजाब सरकार ने 'आनंदपुर साहिब प्रस्ताव' पारित किया, जिसमें केंद्र एवं राज्य के संबंधों के विषय में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की मांग व सुझाव दिया गया, जिसमें संघ सरकार की शक्तियां केवल निम्न विषयों तक सीमित होनी चाहिए। जैसे-रक्षा, संचार एवं विदेश मामले। आयोग के प्रस्तावानुसार, शेष शक्तियां राज्य सरकार को सौंप दिया जाए, परंतु संघ सरकार द्वारा इन मांगों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया तथा संघ सरकार के अनुसार ये मांगें विघटनकारी हैं। यद्यपि यह बिंदु ध्यान देने योग्य है कि स्वायत्तता व विघटनवाद में अंतर होता है, परंतु राज्य सरकारों की परिवर्तन की मांग भी तार्किक प्रतीत नहीं होतीं, क्योंकि मूल समस्या राजनीतिक थी, संवैधानिक नहीं।

3. पश्चिम बंगाल सरकार का ज्ञापन

पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार ने केंद्र एवं राज्य संबंधों के विषय में संघ सरकार को एक ज्ञापन वर्ष-1977 में सौंपा, **जिसकी मांगें निम्नलिखित थीं** -

- संविधान में 'यूनियन' की बजाए, 'संघ' शब्द का प्रयोग किया जाए।
- संघ सरकार की शक्तियों को केवल रक्षा, विदेश, मुद्रा, संचार एवं आर्थिक समन्वय तक सीमित कर दिया जाए, शेष सभी विषय राज्य सूची में हस्तांतरित कर दिया जाए।
- अवशिष्ट शक्तियों को राज्य सूची में रख दिया जाए।
- अनुच्छेद-356, 357 एवं 360 को समाप्त कर दिया जाए।
- अखिल भारतीय सेवाएं समाप्त हों तथा भारत में केवल केंद्रीय एवं राज्य सेवाएं ही होनी चाहिए।
- नए राज्यों के निर्माण या राज्यों के पुनर्गठन के संदर्भ में संबंधित राज्यों की सहमति अनिवार्य हो।
- केंद्र सरकार द्वारा अर्जित सभी प्रकार के राजस्व का 75 प्रतिशत भाग राज्यों को सौंप दिया जाए।

80 के दशक से क्षेत्रीयता एवं स्वायत्तता की मांग और प्रभावी हुई तथा इस मांग पर सकारात्मक अनुक्रिया व्यक्त करते हुए संघ सरकार ने पहली बार केंद्र एवं राज्यों के मध्य संबंधों पर पुनर्विचार करने के लिए 'सरकारिया आयोग' का गठन किया।

सरकारिया आयोग

सरकारिया आयोग का गठन वर्ष-1983 में केंद्र सरकार द्वारा संघ एवं राज्यों के संबंधों की जांच करने के उद्देश्य से किया गया था। इस आयोग में तीन सदस्य (न्यायाधीश आर. एस. सरकारिया, श्री बी. शिवरमन एवं डॉ. एस. आर. सिंह) थे। वर्ष-1987 में इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी, **जिसमें महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं** -

1. संघ को शक्तिशाली बनाया जाए

- सरकारिया आयोग के अनुसार, केंद्रीयकृत नियोजन आवश्यक है।
- आयोग ने भारत में अखिल भारतीय सेवाओं को आवश्यक माना। आयोग ने तो यहां तक कहा कि 'भारत में कुछ और अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।'
- आयोग के अनुसार, राज्यपाल की संघ सरकार द्वारा नियुक्ति बिल्कुल उचित है। अतः अनुच्छेद-200 समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है।
- अनुच्छेद-356, 357 एवं 360 भी संविधान में बने रहने चाहिए और इनको संविधान से हटाने की आवश्यकता नहीं है।
- संघ सरकार राज्यों में सीधे केंद्रीय सैनिक बल भेज सकता है।

2. राज्यों को स्वायत्तता भी प्राप्त होनी चाहिए

- आयोग के अनुसार, अनुच्छेद-263 के प्रावधान के अंतर्गत् अंतर्राज्यीय परिषद् की स्थापना होनी चाहिए। इसलिए अनुशंसा के अनुरुप वर्ष-1990 में वी. पी. सिंह सरकार ने अंतर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की।
- राज्यपाल एक विशिष्ट व्यक्ति होना चाहिए, जिसका संबंध स्थानीय दलीय राजनीति से न हो।
- राज्यपाल का कार्यकाल 5 वर्षों का होना चाहिए। आपवादिक परिस्थिति में ही उसे समय से पूर्व हटाया जाए, लेकिन यदि उसे हटाया जाता है, तो इसके वास्तविक कारण लिखित रुप में संसद के समक्ष प्रस्तुत होने चाहिए।
- अनुच्छेद-356 का प्रयोग अंतिम विकल्प के रुप में होना चाहिए।
- राज्य को अधिक वित्तीय शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। आयोग के अनुसार, करारोपण के संबंध में अवशिष्ट शक्तियां संघ में निहित होनी चाहिए, जबकि शेष अवशिष्ट शक्तियों को समवर्ती सूची में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् को पुनर्गठित कर राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् बनाया जाए।
- केंद्र सरकार द्वारा आयकर पर अधिभार (Surcharge) का प्रयोग नहीं करना चाहिए, यदि आवश्यक हो, तो इसका प्रयोग अपवाद स्वरुप ही होना चाहिए।
- अनुच्छेद-200 के अंतर्गत् यदि राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति की राय के लिए आरक्षित करें, तो इस पर 4 महीने के अंदर निर्णय हो जाना चाहिए।

3. शक्तिशाली संघीय शासन राज्यों की स्वायत्तता का पूरक है

शक्तिशाली संघ एवं राज्यों की स्वायत्तता परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। सरकारिया आयोग ने स्पष्ट रुप में भारत में शक्तिशाली संघ सरकार का समर्थन किया एवं राज्यों की स्वायत्तता और शक्तिशाली संघ को एक-दूसरे को पूरक माना और इससे भी बढ़कर भारत में सहकारी संघवाद को प्रभावी करने पर बल दिया। उदाहरण के लिए, आयोग ने भारत में त्रिभाषा फॉर्मूला लागू करने पर बल दिया एवं नदी जल विवादों के निपटारे के लिए एक निश्चित समयावधि में न्यायाधिकरण की स्थापना का समर्थन किया। न्यायाधिकरण की अनुशंसाओं को बाध्यकारी बनाने पर भी बल दिया। आयोग के अनुसार, राज्यों की स्वायत्तता आवश्यक है, परंतु इसके लिए संविधान में किसी बड़े परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, बल्कि राजनीतिक दुष्प्रयोगों (संविधान का) को प्रतिबंधित कर आंशिक रुप में संविधान में परिवर्तन करके यह संभव है। इसलिए आयोग ने पूर्व के अतिवादी मांगों को अस्वीकृत कर दिया।

गठबंधन सरकार के दौर में आयोग की अधिकांश अनुशंसाओं को सभी दलों के द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। इससे स्पष्ट है कि स्वायत्तता की मांग मूलत: राजनीतिक समस्या थी, जिसका समाधान राजनीतिक रुप में हो रहा है। वर्तमान समय में अनुच्छेद-356 का दुरुपयोग काफी कम हुआ है। सभी केंद्रीय कर राज्यों के साथ विभाजित किए जा रहे हैं तथा राज्यों को केन्द्रीय करों में अधिक से अधिक हिस्सा भी प्रदान किया जा रहा है।

पंछी आयोग

वर्ष-1989 भारत में संघ सरकार में गठबंधन सरकारों का निर्माण हुआ अथवा अल्पमत सरकारें बनीं। संघ सरकार के निर्माण में क्षेत्रीय दलों की भूमिका अत्यधिक प्रभावी हो गई और क्षेत्रीय दलों ने राज्यों के लिए ज्यादा से ज्यादा स्वायत्तता की मांग उठाई, जिसे प्रभावी रुप में पूर्ण करने के लिए 'पंछी आयोग' की स्थापना की गई, जिसके द्वारा राज्यों की स्वायत्तता का समर्थन किया गया।

पंछी आयोग की स्थापना वर्ष-2007 में की गई। इन्होंने अपनी रिपोर्ट वर्ष-2010 में प्रस्तुत की। पंछी आयोग की मान्यताएं मूलत: सरकारिया आयोग से मिलती-जुलती हैं, लेकिन तकनीकी मामलों में दोनों में अंतर प्रतीत होता है।

समिति की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं -

- आयोग के अनुसार, अनुच्छेद-355, 356 में संशोधन होना चाहिए। उन्होंने आपातकालीन प्रावधानों के स्थानीय प्रयोग का समर्थन किया। उदाहरण के लिए, किसी जनपद के भाग में भी आपातकाल लागू किया जा सकता है। उनके अनुसार, आपातकाल तीन (3) महीने से ज्यादा की नहीं होना चाहिए।
- आयोग ने मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संदर्भ में स्पष्ट रुप में अनुशंसा की है। आयोग के अनुसार, चुनाव पूर्व गठबंधन को एक दल माना जाए तथा चुनाव पूर्व सबसे बड़े गठबंधन को सरकार बनाने के लिए पहले आमंत्रित किया जाए और चुनाव के बाद निर्मित होने वाले गठबंधन को अंत में आमंत्रित किया जाए।
- राज्यपालों की योग्यता के संदर्भ में पंछी आयोग की राय सरकारिया आयोग की भांति है, जिसमें यह कहा गया है कि राज्यपाल के रुप में ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाए, जिसका स्थानीय दलों से कोई संबंध न हो।
- आयोग ने राज्यपालों के मनमानी तरीके से बर्खास्तगी की आलोचना की। आयोग के अनुसार, राज्यपालों को राजनीतिक फुटबाल की तरह प्रयोग नहीं करना चाहिए। आयोग ने राज्यपाल के कार्यकाल को 5 वर्ष निर्धारित करने की मांग की है।
- आयोग ने राज्यपाल को हटाने के लिए विधान सभा द्वारा महाभियोग की प्रक्रिया को स्वीकार करने की अनुशंसा की है।
- पंछी आयोग ने वर्ष-2007 में स्थापित वेंकेट चेलैया आयोग की अनुशंसा का समर्थन करते हुए कहा कि राज्यपाल की नियुक्ति एक समिति द्वारा होनी चाहिए, जिसमें प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, लोक सभा का स्पीकर तथा संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री व उपराष्ट्रपति को शामिल किया जाए।
- आयोग ने अनुच्छेद-163(2) में विवेकाधीन शक्तियों को सीमित करने की अनुशंसा की है।
- आयोग ने अनुच्छेद-200 के अंतर्गत् आरक्षित किसी भी विधेयक पर 4 महीने की अवधि में अनुमति प्रदान करने की अनुशंसा की है।
- आयोग के अनुसार, सांप्रदायिक हिंसा विधेयक में परिवर्तन करके यह प्रावधान होना चाहिए कि केंद्रीय सैनिक बलों को राज्य की सहमति के बिना कुछ समय के लिए तैनाती की जाए तथा तैनाती के बाद राज्य सरकार की अनुमति ली जा सकती है।
- आयोग ने आंतरिक सुरक्षा को बनाए रखने के लिए अमेरिका की भांति 'राष्ट्रीय एकता परिषद्' को ज्यादा शक्तिशाली बनाने की मांग की, जिस प्रकार अमेरिका में गृह सुरक्षा विभाग की भूमिका है। आयोग ने राष्ट्रीय एकता परिषद् को वर्ष में कम से कम एक बार सम्मेलन करने को अनिवार्य बताया।
- आयोग के अनुसार, भारत में राष्ट्रीय अन्वेषण एजेंसी जैसी संस्थाओं के निर्माण की आवश्यकता है, जो आतंकवाद के संबंध में राज्यों के बीच बेहतर सहयोग सुनिश्चित करें।
- आयोग ने पंचायती नियोजन को ज्यादा प्रभावशाली बनाने की अनुशंसा की।

- आयोग ने राज्यों के वित्तीय स्वायत्तता का भी समर्थन किया, जिससे राज्य आत्मनिर्भर बन सकें।

संघीय व्यवस्था में स्वायत्त राज्य

जम्मू एवं कश्मीर

स्वतंत्रता के बाद भारत में कश्मीर के विलय को लेकर समस्याएं पैदा हुईं। कश्मीर, भारत के उत्तर में स्थित एक राज्य है, जो भौगोलिक रुप से भारत व पाकिस्तान दोनों से संबद्ध रखता है। कश्मीर में 77 प्रतिशत जनसंख्या मुस्लिम, 20 प्रतिशत हिंदू, 3 प्रतिशत बौद्ध व सिख समुदाय के लोग निवास करते हैं। जम्मू एवं कश्मीर, एक हिंदू राजा द्वारा शासित रियासत थी, जिसे धार्मिक आधार पर पाकिस्तान ने जम्मू एवं कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करने की मांग की थी, परंतु माउण्टबेटन योजना के आधार पर प्रत्येक रियासत को भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित होने या स्वतंत्र रहने का विकल्प दिया गया था, परंतु विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण तत्कालीन जम्मू एवं कश्मीर के राजा हरि सिंह स्वतंत्र राज्य स्थापित करना चाहते थे। फलतः उन्होंने लंबे समय तक न तो पाकिस्तान में और न ही भारत में सम्मिलित होने का प्रयास किया। इसी असमंजस की स्थिति का लाभ उठाते हुए पाकिस्तानी सैनिकों ने कबायलियों के वेश में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया तथा स्थिति की गंभीरता को देखते हुए महाराजा हरि सिंह ने कश्मीर को भारत में विलय करने का निश्चय किया।

विलय-पत्र (Merger)

यह एक दस्तावेज था, जिसके तहत् जम्मू एवं कश्मीर का भारत में विलय किया गया। इस विलय-पत्र के तहत् जम्मू एवं कश्मीर ने भारत की संप्रभुता स्वीकार कर लिया तथा भारतीय संघ का एक राज्य बन गया, परंतु इस विलय-पत्र में अन्य राज्यों से अलग जम्मू एवं कश्मीर के लिए विशेषाधिकार स्वीकार किया गया तथा केवल रक्षा, विदेश संबंध तथा संचार विषय पर संघ का अधिकार स्वीकार किया गया एवं अन्य विषय राज्य सूची में शामिल किए गए। जम्मू एवं कश्मीर एकमात्र भारतीय राज्य है, जिसका अपना संविधान है। स्वतंत्रता के बाद जम्मू एवं कश्मीर के राज्यपाल जिसे 'सदर-ए-रियासत' कहा जाता था, जिसका निर्वाचन जम्मू एवं कश्मीर विधान सभा के द्वारा होता था। जम्मू एवं कश्मीर के मुख्यमंत्री को वहां का प्रधानमंत्री कहा जाता था। अतः जम्मू एवं कश्मीर को अत्यधिक स्वायत्तता दी गई और इसके विलय के समय संघ सरकार का जम्मू एवं कश्मीर पर केवल तीन विषयों पर नियंत्रण था, जिसमें रक्षा, विदेश तथा संचार शामिल थे।

कश्मीर के भारतीय संघ में विलय की परिस्थितियां अत्यधिक महत्वपूर्ण थीं। स्वतंत्रता के बाद हैदराबाद एवं जूनागढ़ का विलय भारतीय संघ में किया गया। इन देशी रियासतों में हिंदू जनता बहुसंख्यक में थे, जबकि शासक मुसलमान थे। इसके विपरीत जम्मू एवं कश्मीर में बहुमत जनता मुस्लिम थी, जबकि शासक हिंदू था। कश्मीर के विलय के दौरान पाकिस्तान के द्वारा कश्मीर पर कबायली आक्रमण किया गया तथा कश्मीर का मुद्दा भारत सरकार के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाया गया, जिसमें जम्मू एवं कश्मीर में जनमत संग्रह का प्रावधान किया गया था। इस संदर्भ में संविधान में जम्मू एवं कश्मीर के लिए एक विशेष प्रावधान किया गया, जो अनुच्छेद-370 में उल्लिखित है।

संवैधानिक प्रावधान (अनुच्छेद-370)

जम्मू एवं कश्मीर राज्य के संबंध में अनुच्छेद-370 के तहत् अस्थाई उपबंध शीर्षक के अंतर्गत् **निम्नलिखित प्रावधान किया गया है** -

- भारतीय संविधान के भाग-6 (राज्य से संबंधित प्रावधान) जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होते।
- जम्मू एवं कश्मीर राज्य के लिए विधि बनाने की संसद की शक्ति संघ सूची तथा समवर्ती सूची तक ही सीमित होगी, जो राष्ट्रपति द्वारा राज्य सरकार से परामर्श करके घोषित किया जाएगा।
- राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्य उपबंधों को जम्मू एवं कश्मीर के संबंध में लागू कर सकता है, लेकिन राज्य सरकार से परामर्श करने के बाद ही, अन्यथा नहीं कर सकता।
- राष्ट्रपति जन-अधिसूचना के माध्यम से यह घोषणा कर सकता है कि अनुच्छेद-370 जम्मू एवं कश्मीर में लागू रहेगा अथवा इसको हटाया जा सकता है, लेकिन ऐसी अधिसूचना जारी करने से पहले राज्य के संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।

- जम्मू एवं कश्मीर को भारतीय संघ के अन्य राज्यों से अलग कुछ विशेष अधिकार दिए गए तथा संघ के अधिकारों में कटौती की गई है।

वर्तमान में कुछ लोग अनुच्छेद-370 को भारतीय संविधान से हटाने की मांग कर रहे हैं। इनके अनुसार, इस प्रावधान से जम्मू एवं कश्मीर में पृथक्तावाद को बढ़ावा मिलता है। संसद के द्वारा निर्मित प्रगतिशील विधि जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर लागू नहीं हो पाते तथा जम्मू एवं कश्मीर भारत के अन्य राज्यों से अपना अलगाव प्रदर्शित करता है। यह महत्वपूर्ण है कि जम्मू एवं कश्मीर का उल्लेख संविधान के संक्रमणकालीन भाग में किया गया है, जिसका अभिप्राय है कि अनुच्छेद-370 संविधान का स्थाई भाग नहीं है, जिसे समाप्त कर देना चाहिए। परंतु अनुच्छेद-370 को समाप्त करने में संवैधानिक बाधा बनी हुई है। इसे समाप्त करने के लिए जम्मू एवं कश्मीर राज्य विधान सभा के समर्थन की आवश्यकता है, जिसके बाद इसे संविधान से हटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जम्मू एवं कश्मीर से अनुच्छेद-370 हटाने के लिए राजनीतिक मुद्दा भी महत्वपूर्ण है। विद्वानों के मतानुसार जम्मू एवं कश्मीर का उल्लेख संविधान के संक्रमणकालीन प्रावधान में किया गया था, क्योंकि यह मुद्दा संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष जनमत संग्रह के लिए लंबित था। भारत के उत्तरी-पूर्वी राज्यों में नागालैण्ड के लिए विशेष स्वायत्तता के प्रावधान हैं तथा 6वीं अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम के लिए विशेष प्रावधान हैं। इन राज्यों की स्वायत्तता हटाने का समर्थन कोई नहीं करता। इसलिए जम्मू एवं कश्मीर से अनुच्छेद-370 हटाने का विवाद राजनीतिक हितों से ज्यादा प्रेरित है। अनेक विशेषज्ञों के द्वारा जम्मू एवं कश्मीर को ज्यादा से ज्यादा स्वायत्तता देने का समर्थन किया गया है। वर्तमान में कश्मीर में भारतीय जनता पार्टी और पी. डी. पी. की साझी सरकार है और अनुच्छेद-370 को बनाए रखने के लिए जम्मू एवं कश्मीर की साझी सरकार द्वारा प्रतिबद्धता भी व्यक्त किया गया है।

राज्य का संविधान

वर्ष-1951 में जम्मू एवं कश्मीर के संविधान सभा का निर्वाचन हुआ, जिसके बाद वर्ष-1952 में भारत सरकार तथा जम्मू एवं कश्मीर की सरकार के बीच समझौता हुआ और तत्पश्चात् 26 जनवरी, 1957 को जम्मू एवं कश्मीर का संविधान अपनाया गया, **जिसमें निम्नलिखित प्रावधान थे** -

- संविधान के अनुसार, जम्मू एवं कश्मीर भारत संघ का अभिन्न अंग है।
- यह भारतीय संघ का एक संवैधानिक राज्य है, जो भारतीय संविधान के भाग-1 तथा अनुसूची-1 में उल्लिखित है।
- जम्मू एवं कश्मीर का अपना स्वयं का संविधान है और उसी के अनुसार यहां का शासन-प्रशासन चलाया जाता है।
- राज्य विधायिका द्वारा निवारक निरोधक कानून बनाया जाता है।
- राज्य आपातकाल (राष्ट्रपति शासन) यहां संवैधानिक तंत्र के विफल होने की स्थिति में लागू होता है, परंतु भारतीय संविधान के अनुसार नहीं, बल्कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य के संविधान के अनुसार।
- राज्य में दो तरह से आपातकाल की घोषणा की जा सकती है -
  (i) राष्ट्रपति शासन (भारतीय संविधान)।
  (ii) राज्यपाल शासन (राज्य संविधान)।
- जम्मू एवं कश्मीर राज्य में प्रथम बार राष्ट्रपति शासन वर्ष-1986 में लगाया गया था।
- संविधान के अनुसार, जम्मू एवं कश्मीर के स्थायी निवासियों को भारतीय संविधान में सभी अधिकार प्रदान किए गए, परंतु स्थायी निवासी के निर्धारण का अधिकार केवल राज्य विधान मण्डल को है। संविधान के अनुसार, भारत के उस नागरिक को राज्य का स्थायी नागरिक माना जाएगा, जो राज्य में अचल संपत्ति रखता है या वर्ष-1944 से निवास कर रहा हो या पाकिस्तान से विस्थापित हो।
- ऊर्दू, जम्मू एवं कश्मीर की आधिकारिक भाषा घोषित की गई तथा अन्य उद्देश्यों हेतु अंग्रेजी को अपनाया गया।
- संविधान में द्विसदनीय विधान मण्डल को अपनाया गया, जिसमें निम्न सदन 111 सदस्यों वाली विधान सभा तथा उच्च सदन 36 सीटों वाली विधान परिषद् है। निम्न सदन में 24 सीटें पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के लिए छोड़ दी गई हैं।
- संविधान के अनुसार, राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा, जो मूल अधिकारों की रक्षा करेगा।

- राज्य के संविधान में नीति निदेशक तत्वों को सम्मिलित नहीं किया गया है।

छठां संविधान संशोधन, 1965

आरंभ में जम्मू एवं कश्मीर के राज्य पर संघ सरकार का सीमित नियंत्रण था, परंतु क्रमिक रुप में संघ सरकार के द्वारा राज्य के अनेक विषयों पर नियंत्रण कर लिया गया, क्योंकि वर्ष-1962 में भारत-चीन युद्ध तथा वर्ष-1965 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के कारण भारत के लिए सुरक्षा की परिस्थितियां प्रतिकूल हो गई थीं। वर्ष-1965 में जम्मू राज्य के संविधान में संशोधन करते हुए कई परिवर्तन किए गए, **जो निम्नलिखित हैं** -

- वर्ष-1965 में 'वजीर-ए-आजम' (प्रधानमंत्री) का नाम परिवर्तित कर मुख्यमंत्री कर दिया गया।
- वर्ष-1965 तक जम्मू एवं कश्मीर पर भारतीय संसद का सीमित अधिकार क्षेत्र था, परंतु छठवें संविधान संशोधन, 1965 द्वारा संघ सूची पर संसद का अधिकार क्षेत्र स्थापित हो गया, परंतु समवर्ती सूची राज्य के अधीन बनी रही।
- राज्य में अनुच्छेद-356 और 357 को लागू किया जा सकता है, परंतु वित्तीय आपातकाल लागू नहीं किया जा सकता।
- छठवें संविधान संशोधन के अनुसार, अब मौलिक अधिकारों को जम्मू एवं कश्मीर में पूर्ण प्रभावी बनाया गया।
- जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर उच्चतम न्यायालय की विशेष अधिकारिता स्वीकृत है और चुनाव आयोग तथा नियंत्रक महालेखा परीक्षक की अधिकारिता भी लागू है।
- जम्मू एवं कश्मीर के उच्च न्यायालय को मूल अधिकारों के उल्लंघन मामले में रिट निकालने की शक्ति प्राप्त है तथा अन्य किसी वाद में रिट निकालने की अधिकारिता नहीं है।

अन्य राज्यों से भिन्न स्थिति

- जम्मू एवं कश्मीर में भारतीय संसद की विधायी शक्ति संघ सूची तक है। समवर्ती सूची तथा 7वीं अनुसूची पूर्णत: राज्य विधान सभा के अधीन हैं।
- संसद द्वारा बनाया गया निवारक निरोधक कानून भी वहां लागू नहीं होता है।
- संसद द्वारा जम्मू एवं कश्मीर में वित्तीय आपात नहीं लगाया जा सकता, केवल अनुच्छेद-352 में वर्णित 'वाह्य युद्ध' के समय ही वहां आपातकाल घोषित किया जा सकता है।
- जम्मू एवं कश्मीर में संविधान में वर्णित नीति निदेशक तत्वों वाले प्रावधान लागू नहीं होते हैं तथा राज्य के क्षेत्रफल एवं नाम इत्यादि में परिवर्तन राज्य सरकार की सहमति से ही किया जा सकता है।
- जम्मू एवं कश्मीर में भारतीय संविधान में वर्णित अनुच्छेद-19(1)(F) तथा 31(2) लागू नहीं होते हैं।
- भारतीय संविधान के भाग-17 में वर्णित भाषाओं का प्रावधान भी जम्मू एवं कश्मीर में लागू नहीं होता है। इसकी राजकीय भाषा ऊर्दू तथा पत्र व्यवहार की भाषा अंग्रेजी है।

इंदिरा गांधी-अब्दुल्ला समझौता, 1975

इस समझौते के तहत् यह कहा गया कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य भारतीय संघ का अभिन्न अंग है तथा भारतीय संघ का जम्मू एवं कश्मीर से संबंध अनुच्छेद-370 के तहत् रहेगा। अनुच्छेद-370 में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार, जम्मू एवं कश्मीर पर भारतीय संघ नियंत्रण रखेगा। 1980 के दशक से जम्मू एवं कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियां आरंभ तथा अलगाववादी शक्तियां अत्यधिक प्रभावशाली हो गईं। कश्मीरियत की पहचान को कट्टरपंथियों ने तोड़ने का प्रयत्न किया तथा कश्मीर को भारत से अलग करने की मांग उठाई गई। इस संदर्भ में भारतीय सरकार के द्वारा कश्मीर को अधिक से अधिक स्वायत्तता देने का समर्थन किया गया।

वृहद् स्वायत्तता की मांग

जम्मू एवं कश्मीर भारतीय संघ का विशेष सुविधा प्राप्त राज्य है। इस राज्य की भौगोलिक महत्व को देखते हुए बार-बार वहां के लोगों द्वारा स्वायत्तता की मांग की जाती रही है। स्वायत्तता की मांग करने वाला वर्ग आतंकवादियों तथा अतिवादियों से भिन्न है। यह वर्ग भारतीय संविधान के तहत् अधिकतम सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता है। स्वायत्तता की मांग करने वालों में कुछ वर्ग ऐसे हैं, जो चाहते हैं कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर संघ सरकार का केवल तीन विषयों पर नियंत्रण होना चाहिए, जैसा कि जम्मू एवं कश्मीर के भारतीय संघ में विलय के दौरान था। परंतु भारत सरकार

के लिए कश्मीर को इस प्रकार की स्वायत्तता देना संभव नहीं है, बल्कि कश्मीर में मानवाधिकारों के हनन को समाप्त करना चाहिए तथा कश्मीर को अधिक से अधिक वित्तीय सहायता दी जाए। वर्ष-2000 में जम्मू एवं कश्मीर राज्य की विधान सभा ने स्वायत्तता प्राप्ति हेतु एक विधेयक पारित किया। **इस विधेयक में निम्नलिखित बातों का उल्लेख है** -

- जम्मू एवं कश्मीर से संबंधित अनुच्छेद-370 को स्थाई बनाया जाए, जिसे अस्थाई प्रावधानों के रुप में जोड़ा गया है।
- केंद्र के पास केवल प्रतिरक्षा, विदेश मामले एवं संचार जैसे विषय ही रहें, शेष विषय राज्य को हस्तांतरित कर दिए जाएं।
- जम्मू एवं कश्मीर राज्य से उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता हटाई जाए।
- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग), चुनाव आयोग तथा अखिल भारतीय सेवाओं वाले प्रावधान जम्मू एवं कश्मीर पर लागू न किए जाएं।
- जम्मू एवं कश्मीर पर भारतीय संसद तथा राष्ट्रपति की भूमिका सीमित किया जाए।
- पूर्व की तरह राज्य के राज्यपाल को 'सदर-ए-रियासत' तथा मुख्यमंत्री को 'वजीर-ए-आजम' कहा जाए।
- आंतरिक अस्थिरता या वाह्य आक्रमण के समय आपातकाल लागू होने पर जम्मू एवं कश्मीर विधान सभा निर्णायक हो।
- अनुच्छेद-356 के प्रावधान को राज्य में लागू न किया जाए।
- जम्मू एवं कश्मीर में मूल अधिकारों के लिए संविधान में एक अलग अध्याय की व्यवस्था होनी चाहिए।
- जम्मू एवं कश्मीर राज्य में नदियों के विवादों के समाधान का अंतिम निर्णय केंद्र के पास नहीं होना चाहिए।

दिलीप पड़गावकर समिति की रिपोर्ट

जम्मू एवं कश्मीर के द्वारा स्वायत्तता की मांग आरंभ से की जाती रही है और राज्य के स्वायत्तता की मांग पर विचार के लिए भारतीय सरकार के द्वारा कश्मीर में एक दल भेजा गया। जम्मू एवं कश्मीर की वर्तमान स्थिति की समीक्षा के लिए वरिष्ठ पत्रकार दिलीप पड़गावकर की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया, **जिसने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित उपायों की सिफारिशें की** -

- राज्य के अलगाव वाले क्षेत्रों को अधिक स्वायत्तता दी जाए।
- राज्य में आर्थिक उत्थान एवं सहायता के लिए लक्षित आर्थिक सहायता प्रदान करना।
- राज्य में सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम, 1958 की समीक्षा भी किया जाए।
- संविधान में अनुच्छेद-370 में उल्लिखित 'अस्थायी' शब्द हटाकर 'विशेष' शब्द रखा जाए।
- राज्यपाल की नियुक्ति के लिए सूची बनाई जाए और उसमें से राज्यपाल का चयन हो।
- अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के अनुपात को धीरे-धीरे कम किया जाए।
- तीन परिषदों का गठन किया जाए - 1. जम्मू, 2. लद्दाख, 3. कश्मीर।

जम्मू एवं कश्मीर की विशेष स्थिति की समाप्ति का ऐतिहासिक फैसला

5 अगस्त, 2019 को भारत सरकार ने एक ऐतिहासिक फैसला लेते हुए जम्मू एवं कश्मीर राज्य से संविधान का अनुच्छेद-370 हटाने एवं राज्य का विभाजन दो संघ शासित क्षेत्रों जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख के रूप में करने का प्रस्ताव किया। इसके लिए संसद द्वारा जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन विधेयक, 2019 पारित किया गया। यह विधेयक जम्मू एवं कश्मीर से अनुच्छेद-370 के अधिकांश प्रावधान समाप्त करने, जम्मू एवं कश्मीर को विधान सभा वाला केंद्र शासित प्रदेश और लद्दाख को बिना विधायिका वाला केंद्र शासित प्रदेश के गठन का प्रावधान करता है। उपरोक्त निर्णय द्वारा जम्मू एवं कश्मीर राज्य की विशेष स्थिति एवं स्वायत्तता को समाप्त कर दिया गया है। वर्तमान में राज्य में अनुच्छेद-370(1) ही लागू रहेगा, जो संसद को जम्मू एवं कश्मीर के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

अनुच्छेद-370 की समाप्ति के संदर्भ में राष्ट्रपति की घोषणा

संविधान के भाग-21 में अस्थाई संक्रमणकालीन एवं विशेष प्रावधानों का उल्लेख है, जिसके अंतर्गत् अनुच्छेद-370 का प्रावधान भी किया गया है।

राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना के माध्यम से अनुच्छेद-370 की समाप्ति की घोषणा तथा इसमें बदलाव किया जा सकता हैं। बशर्ते कश्मीर की संविधान सभा की सहमति प्राप्त हैं, परंतु 26 जनवरी, 1957 को जम्मू एवं कश्मीर की संविधान सभा भंग हो चुकी हैं।

5 अगस्त, 2019 को राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद-370 के खण्ड तीसरे के तहत् सार्वजनिक अधिसूचना के माध्यम से अनुच्छेद-370 की समाप्ति की घोषणा की गई। तत्कालीन समय में जम्मू एवं कश्मीर में राज्यपल शासन था। अतः राज्यपाल द्वारा इसे सहमति प्रदान की गई तथा इसे राज्य सरकार की सहमति के रूप माना गया। संसद के द्वारा संविधान संशोधन के लिए अनुच्छेद-368 का प्रयोग किया जाता है, लेकिन जम्मू एवं कश्मीर का अलग संविधान था। इसलिए अनुच्छेद-368 कश्मीर के लिए लागू नहीं होता। कश्मीर के लिए राष्ट्रपति द्वारा जारी आदेश भारतीय संविधान के परिशिष्ट में उल्लेखित हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति की सार्वजनिक अधिसूचना के माध्यम से राज्य के दर्जे को समाप्त कर दिया गया।

राष्ट्रपति की अधिसूचना द्वारा प्रमुख बदलाव

- जम्मू एवं कश्मीर को दो भागों में विभाजित कर दिया गया है, जिसमें जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख दो नए संघ शासित प्रदेश होंगे।
- जम्मू एवं कश्मीर में विधान सभा होगी, जबकि लद्दाख में विधान सभा नहीं होगी।
- जम्मू एवं कश्मीर के वर्ष-1957 से लागू पृथक् संविधान रद्द हो गया, अब वहां भारत का संविधान लागू होगा और जम्मू एवं कश्मीर का अलग झण्डा भी अब नहीं होगा।
- जम्मू एवं कश्मीर में दोहरी नागरिकता को भी समाप्त कर दिया गया।
- राष्ट्रपति की अधिसूचना के माध्यम से अनुच्छेद-35(A) को भी समाप्त कर दिया गया है। यह अनुच्छेद राज्य के स्थाई निवासियों को परिभाषित करने के लिए जम्मू एवं कश्मीर राज्य की विधायिका को शक्ति प्रदान करता है तथा राज्य में स्थानीय निवासियों के अलावा भारतीय भू-भाग में रहने वाले अन्य किसी व्यक्ति को जम्मू एवं कश्मीर में भूमि खरीदने का अधिकार नहीं था।

इस अधिसूचना के माध्यम से देश के सभी लोगों को जम्मू एवं कश्मीर में जमीन खरीदने एवं रहने तथा नौकरी करने का भी अधिकार प्रदान कर दिया गया है -

(i) जम्मू एवं कश्मीर की लड़कियों को अब दूसरे राज्यों के लोगों से बिना किसी प्रतिबंध के विवाह करने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। लेकिन इससे पहले उनकी नागरिकता समाप्त करने का प्रावधान था।

(ii) रणवीर दण्ड संहिता के स्थान पर भारतीय दण्ड संहिता प्रभावी होगी तथा संसद द्वारा निर्मित विधि व प्रावधान स्वतः ही जम्मू एवं कश्मीर पर लागू होंगे।

अनुच्छेद-370 शुरू से राष्ट्रीय बहस का मुद्दा रहा है। देश का एक वर्ग इसे जम्मू एवं कश्मीर में पृथक्तावाद को बढ़ावा देने वाला मानता रहा है। उनका मानना रहा है कि संसद के द्वारा निर्मित प्रगतिशील विधि जम्मू एवं कश्मीर पर लागू नहीं हो पाती। लेकिन यह धारणा बनाना उचित नहीं होगा कि अनुच्छेद-370 की समाप्ति से कश्मीर की समस्या सुलझ जाएगी। जम्मू एवं कश्मीर मानवाधिकार फोरम ने अनुच्छेद-370 की समाप्ति के दो वर्ष पूरे होने पर एक रिपोर्ट में आतंकवाद को लेकर चिंता जाहिर की गई है, जो कि जम्मू एवं कश्मीर में एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। रिपोर्ट में माना गया है कि अभी भी सार्वजनिक, नागरिक एवं मानव सुरक्षा संबंधी मुद्दे को प्राथमिकता नहीं दी जा रही है।

आलोचकों ने सरकार के इस निर्णय को भारतीय संघीय व्यवस्था पर आघात माना है। उनका मत है कि एक स्वायत्त राज्य को विधान सभा की सहमति के बिना एक अधिसूचना से उसका अस्तित्व समाप्त करना भारतीय संविधान का उल्लंघन है।

संघीय व्यवस्था एक गतिशील विचार है, जो राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। संघीय व्यवस्था को समग्रता से समझने के लिए उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। संविधान का अनुच्छेद-370 संविधान का स्थाई भाग रही है। यह अस्थाई संक्रमणकालीन प्रावधान है। सरकार का मानना है कि भारतीय राज्यों के एकीकरण का मकसद देश की अखंडता बनाए रखना है। अतः जम्मू एवं कश्मीर की संप्रभुता भारत के संविधान के बाहर नहीं है और जम्मू एवं कश्मीर का संविधान भी कहता था कि वह भारतीय संविधान के अधीन हैं।

विशेष राज्य का दर्जा

भारतीय संघीय व्यवस्था में संघ सरकार अत्यधिक शक्तिशाली एवं वित्तीय रुप में भी संघ सरकार की शक्तियां राज्यों की तुलना में अधिक है। केंद्रीय करों को संघ एवं राज्यों के बीच विभाजन के लिए वित्त आयोग का गठन किया जा सकता है और वित्त आयोग के द्वारा उन राज्यों को करों का अधिक हिस्सा प्रदान किया जाता है, जो पिछड़े राज्य हैं। इसके अतिरिक्त वित्त आयोग के द्वारा विशेष राज्य के दर्जे का प्रावधान किया गया, जिससे पिछड़े राज्यों को आर्थिक विकास की मुख्य धारा में शामिल किया जा सके।

विशेष राज्य के दर्जे का विचार वर्ष-1969 में सामने आया। वित्त आयोग द्वारा गॉडगिल फॉर्मूले के आधार पर तीन (3) राज्यों (असम, मेघालय तथा जम्मू एवं कश्मीर) को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया। इसके बाद इसमें अरुणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, सिक्किम, त्रिपुरा एवं उत्तराखण्ड को भी शामिल कर लिया गया। राज्यों को विशेष दर्जा देने के लिए **निम्नलिखित आधारों का प्रयोग किया गया** -

- पहाड़ी और दुर्गम क्षेत्र।
- कम जनसंख्या घनत्व तथा जनजातियों की ज्यादा आबादी।
- पड़ोसी राज्यों के साथ सामरिक अवस्थिति।
- आर्थिक एवं आधारभूत संरचना के क्षेत्र का पिछड़ापन।
- राज्य के वित्त की कमजोर स्थिति।

लाभ

गॉडगिल फॉर्मूले के अनुसार, विशेष राज्य की श्रेणी में शामिल राज्यों को संघ सरकार के द्वारा करों में विशेष छूट प्राप्त होती है तथा इन राज्यों को प्रशुल्कों में भी छूट मिलती है, जिससे राज्यों में निवेश आकर्षित होता है। राज्यों के समक्ष बजट की कमी नहीं होती और उनके ऋण भी मॉफ कर दिए जाते हैं। केंद्र प्रायोजित योजनाओं में विशेष राज्यों को 90 प्रतिशत अनुदान व 10 प्रतिशत कर्ज दिया जाता है, जबकि अन्य राज्यों को केंद्र प्रायोजित योजनाओं में 70 प्रतिशत अनुदान और 30 प्रतिशत कर्ज दिया जाता है। संघ सरकार के द्वारा राज्यों को दी गई कुल सहायता का 30 प्रतिशत भाग विशेष राज्य के दर्जे वाले राज्यों को प्राप्त होता है।

प्रस्तावित परिवर्तन

वर्ष-2013 के बजट भाषण में तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम् ने नए मानकों के लिए सुझाव दिया। उनके अनुसार, राज्यों का राष्ट्रीय औसत आय से पिछड़ापन, प्रति व्यक्ति आय, साक्षरता एवं अन्य मानवीय विकास के संकेतों को आधार बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त रघुराम राजन पैनल के द्वारा भारत में पिछड़े राज्यों के पहचान के लिए बहु-आयामी संकेतकों का प्रयोग किया गया तथा उड़ीसा को सबसे पिछड़ा राज्य एवं गोवा को सबसे विकसित राज्य कहा गया। वर्तमान में बिहार एवं उड़ीसा के मुख्यमंत्री भी अपने-अपने राज्यों को विशेष राज्यों की श्रेणी में शामिल करने की मांग कर रहे हैं।

संघवाद और आतंकवाद विरोधी राष्ट्रीय केंद्र (National Counter Terrorism Centre, (NCTC))

एन. सी. टी. सी. एक शक्तिशाली संघीय जांच केंद्र है, जो आतंकवाद एवं नक्सलवाद के खिलाफ कार्य करेगा। भारत में नक्सलवाद एवं आतंकवाद पर राज्यों के बीच परस्पर तालमेल के अभाव के कारण समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है। इस जांच केंद्र के निर्माण की बात बंबई आतंकी घटना के बाद उठी। आतंक से और अधिक प्रभावी ढ़ंग से निपटने के लिए जांच केंद्र की स्थापना की बात की जा रही है। ये सभी आतंक विरोधी उपायों के नियंत्रण व समन्वय का केंद्र होगा। फिलहाल अभी राज्य सरकारों के विरोध के कारण इस पर विचार स्थगित कर दिया गया है। राज्यों का कहना है कि यह केंद्र एवं राज्यों के अधिकारों को कम करेगा। पंछी आयोग ने सबसे पहले इस निकाय की स्थापना की बात की थी।

संरचना

इस निकाय का गठन इंटेलिजेंस ब्यूरो (IB) के अधीन किया जाना है, इसका निदेशक आई. बी. के अतिरिक्त निदेशक के समकक्ष होगा। इसमें आई. बी., रॉ, जे. आई. सी, सेना, खुफिया निदेशालय, नार्कोटिक्स विभाग के अधिकारी

सदस्य होंगे, जिससे यह एक संतुलित निकाय बन सके। यह एक राष्ट्रीय आतंकवाद विरोधी केंद्र होगा, जिसके क्षेत्रीय कार्यालय नहीं होंगे एवं क्षेत्रीय स्तर पर इसके कार्यों को आई. बी. के मौजूदा शाखाओं द्वारा देखा जाएगा।

कार्य

इसके निम्नलिखित कार्य हैं -

- आतंकवाद विरोधी कार्यों की जांच करना।
- आसूचना प्रक्रिया को समन्वित करना।
- राज्यों के आतंक विरोधी कार्यों में सहयोग प्रदान करना।
- विभिन्न आसूचना एजेंसियों के सूचनाओं का ऑकलन करना, ताकि समय पर आतंकी कार्यवाही को रोका जा सके।

विवाद के कारण

लोक व्यवस्था, राज्यों का विषय है। राज्यों को डर है कि एन. सी. टी. सी. के नाम पर केंद्र, राज्यों के अधिकारों में दखलंदाजी करेगा तथा संघ के मूल स्वरुप को नष्ट कर सकता है। एन. सी. टी. सी. में राज्यों को मूल आपत्ति रेलवे पुलिस बल अधिनियम, 1957 (RPF Act, 1957) के संशोधन तथा एन. सी. टी. सी. में बनने वाले नए आसूचना निकायों को लेकर है। रेलवे पुलिस बल अधिनियम, 1957 के संशोधन में यह कहा गया है कि संघ सरकार के द्वारा राज्य के किसी व्यक्ति को हिरासत में लिया जा सकता है, जिसके लिए राज्य सरकार को सूचित करना आवश्यक नहीं है।

आसूचना इकाईयों को भी राज्य में मुक्त रुप में कार्य करने की अनुमति दी गई है, जिस पर तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता, उड़ीसा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक, गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी व पं. बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने भी अपनी आपत्ति दर्ज कराई थी तथा क्षेत्रीय दल लगातार संघ सरकारों पर दबाव बनाने की नीति का प्रयोग कर रहे हैं। संघ सरकार क्षेत्रीय दलों की बातों को मानने के लिए विवश हैं, क्योंकि क्षेत्रीय दलों के समर्थन से ही संघ सरकार का अस्तित्व टिका हुआ था। एन. सी. टी. सी., लोकपाल का विवाद भारत में नए संघवाद को प्रभावी होने का पर्याप्त उदाहरण है, जहां क्षेत्रीय दलों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक हो चुकी है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत में एक शक्तिशाली संघीय सरकार का समर्थन किया है और सरकारिया आयोग ने यह स्पष्ट रुप में कहा कि संघ का शक्तिशाली होना राज्यों की स्वायत्तता का विरोधी नहीं है। राज्यों की स्वायत्तता एवं शक्तिशाली संघ एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। इसलिए एन. सी. टी. सी. का निर्माण भारत में संघीय भावना के प्रतिकूल नहीं है व संघ एवं राज्य दोनों के मतभेदों का समाधान राजनीतिक व राष्ट्रीय एकता के हित में करना चाहिए, जिसमें राज्यों की स्वायत्तता भी कायम रहे व पृथक्तावादी गतिविधियों पर अंकुश लगाया जा सके।

.....

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learnig Platform
KHAN SIR